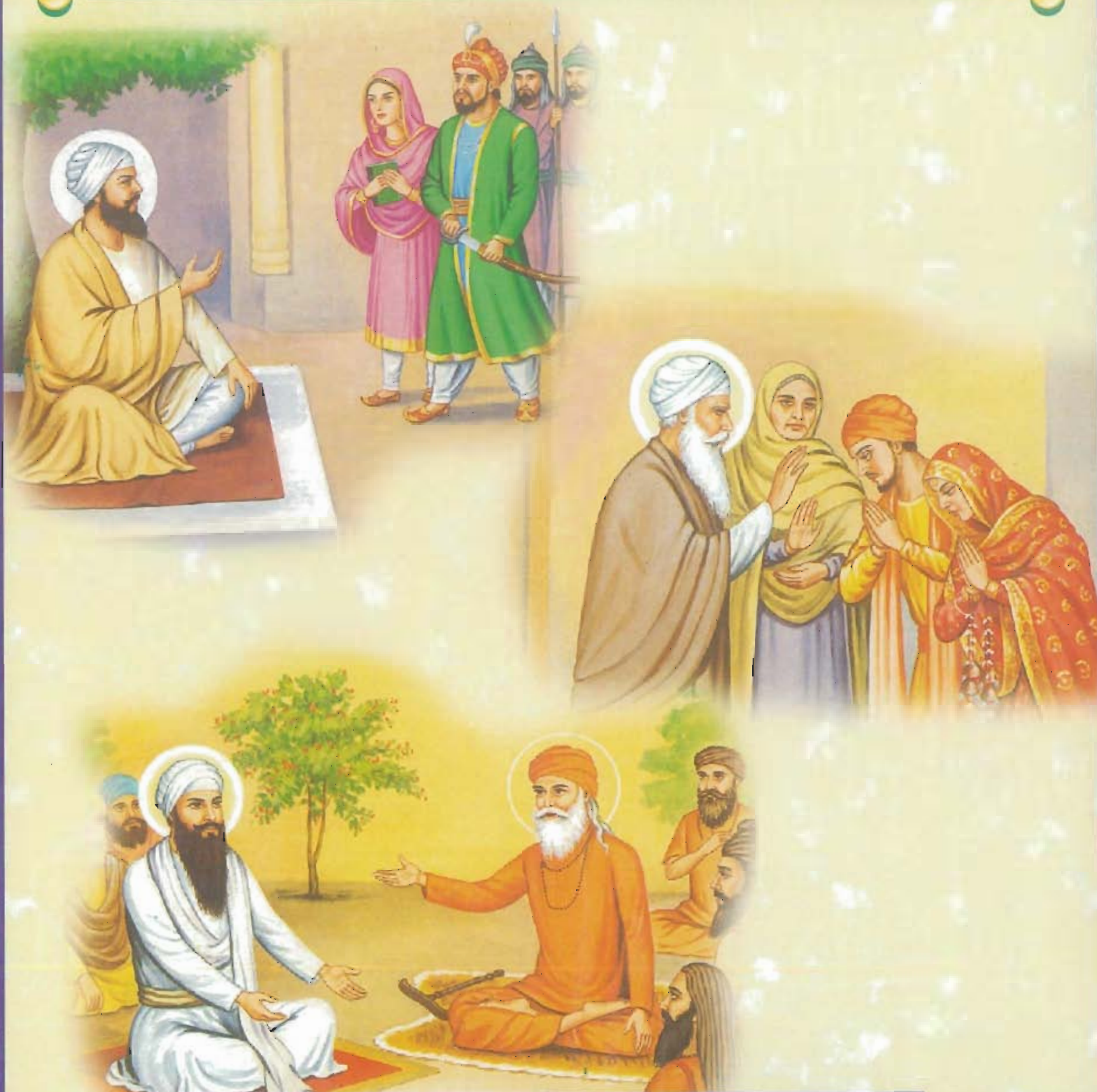
सचित्र जीवन साखीयां

गुरु अंगद देव जी
गुरु अमरदास जी
गुरु रामदास जी



डा. अजीत सिंघ औलख



ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥



सचित्र जन्म साखियां

गुरु अंगद देव जी
गुरु अमरदास जी
गुरु रामदास जी

डा. अजीत सिंघ औलख

एम. ए. पी-एच.डी.



प्रकाशक:

भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।

ISBN 81-7601-271-8

पहली बार 1999

दूसरी बार जून 2005

भेटा : 120/-



भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।

फोन : 91-183-2542346, 2547974 फैक्स : 5017488

Email : csjssales@hotmail.com, csjspurchase@yahoo.com Website : www.csjs.com

मुद्रक:— जीवन प्रिंटर्ज, अमृतसर। फोन: 0183—2705003



गुरु अंगद देव जी

आरम्भिक जीवन

गुरु अंगद देव जी का उनके माता-पिता द्वारा रखा गया प्रथम नाम भाई लहणा जी था। आप जी का जन्म 31 मार्च 1504 ई. को ज़िला फिरोज़पुर (वर्तमान ज़िला मुक्तसर) तहसील मुक्तसर के गांव मत्ते दी सराय में हुआ। आपके पिता भाई फेरुमल जी अच्छे साहूकार थे और फिरोज़पुर के हाकिम के पास मुनीमी का काम करते थे। अच्छे पढ़े-लिखे और विद्वान होने की वजह से सारे इलाके में उनका अच्छा मान-सम्मान था। मीठे- मधुर और मेल-मिलाप वाले स्वभाव के कारण उनके घर पर हमेशा रौनक लगी रहती। जिसको भी कोई मुश्किल पेश आती आपके पास आकर निवेदन करता।

भाई लहणा जी के जन्म पर सारे इलाके में खुशियां मनाई गईं। भाई फेरुमल जी धार्मिक प्रवृत्ति के, और देवी दुर्गा के उपासक थे। उनके घर में देवी मां की प्रशंसा-स्तुति में भजन गाए जाते थे और वे हर वर्ष अपने सत्संगियों का जत्था लेकर ज्वालामुखी जाते थे। सारे सत्संगी सुन्दर बालक को देखकर देवी माता की अपार कृपा बता रहे थे। पंडित यह भविष्यवाणी भी कर रहे थे कि वह बड़े होकर शिरोमणि भक्त बनेंगे।

जब भाई लहणा जी बड़े हुए तो उनकी शिक्षा का विशेष प्रबंध किया गया। भाई फेरुमल जी जैसे कि स्वयं अच्छे पढ़े-लिखे थे इसलिए अपने पुत्र को हर प्रकार की विद्या पढ़ाई।

जब भाई लहणा जी जवान हो गए तब आप जी का विवाह ज़िला अमृतसर के गांव संघर में श्री देवी चन्द की सपुत्री खीवी जी के साथ कर दिया।

भाई लहणा जी के विवाह के कुछ समय पश्चात् भाई फेरुमल जी का मुसलमान हाकिम के साथ अनबन हो गई और वे अपने परिवार समेत पहले हरी के पत्तण तथा फिर अपने सम्बन्धी के गांव संघर में आ बसे। यहां आकर भी आपने अपनी साहूकारी का काम चला लिया और कुछ समय में सारे इलाके में ही प्रसिद्ध हो गए। यहां से भी वे हर वर्ष जत्था लेकर देवी मां के दर्शनों को जाते। भाई लहणा जी भी कई बार अपने पिता जी के जत्थे के साथ देवी के दर्शनों को जाते थे और देवी उपासक बन गए।

सन् 1526 ई. में भाई फेरुमल जी ईश्वर चरणों में सिधार गए तब भाई लहणा जी जत्थे के मुखी बन गए, परन्तु देवी के दर्शन करके या देवी उपमा में भजन गाकर उनको संतुष्टि नहीं होती थी। वे हर समय कुछ सूना-सूना महसूस करते थे। देवी माता

की भक्ति करने से उनको प्रभु-मिलाप की उम्मीद नज़र नहीं आती थी। इसलिए आम तौर पर वे साधुओं-महात्माओं से मिलते रहते और प्रभु भक्ति के सम्बन्ध में पूछते रहते, पर एक दिन अचानक ही उनके मन के कपाट खुल गए। उनका एक ऐसे व्यक्ति से मिलाप हो गया जो एक अच्छे गुरु का सिक्ख था और उनके गांव का ही रहने वाला था। हर व्यक्ति की जिन्दगी में कई बार ऐसे मोड़ आते हैं जब वह एकदम गरीब से लखपति बन जाता है। भाई लहणा जी के जीवन में भी ऐसी ही घटना घटित हुई जो उनको एक साधारण व्यक्ति से महान पातशाह बना गई।



गुरु का शब्द सुना

आप जी हर रोज़ सुबह गांव के तालाब में स्नान करने जाया करते थे। एक दिन जब वह स्नान करने गए तो उन्होंने एक व्यक्ति को स्नान करते देखा। वह व्यक्ति बड़ी ऊँची-ऊँची सुरीली लह में वाणी पढ़ रहा था। भाई लहणा जी इतनी मधुर वाणी सुन कर सम्मोहित हो गए। वे तुरन्त उस व्यक्ति के पास पहुंचे। निकट जाकर उन्होंने देखा कि भाई जोध आसा की वार की इक्कीसवीं पउड़ी का पाठ कर रहा था :

"जितु सेविऐ सुखु पाईऐ सो साहिबु सदा सम्हालीऐ॥
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा चालीऐ॥
किछु लाहे उपरि घालीऐ ॥21॥

भाई लहणा जी ने ऐसी वाणी पहले कभी नहीं सुनी थी। वे तो केवल देवी की भजन ही सुनते थे या आप गाते थे। उनकी आवाज़ बड़ी सुरीली थी और उनके भजन सुनकर देवी मां की संगत प्रसन्न हो जाती थीं, पर भाई जोध जी, जो गुरु नानक साहिब की वाणी पढ़ते थे, की उस वाणी के समक्ष देवी माता के भजन उनको फीके-फीके लगे। भाई जोध जी के पास जाकर वे बड़ी निम्रता से बोले,"भाई जोध जी यह भजन आपने कहां से याद किए हैं।" भाई जोध जी बोले, "महापुरुषो ! यह भजन नहीं है, यह बाबे नानक निरंकारी की ईश्वरीय वाणी है, यह उनको ईश्वरानुभूत हुई है, जो इस वाणी को पढ़ता है, वह परम पिता के दर्शन करता है और इस भवसागर को पार कर जाता है।" भांई लहणा जी के मन में और लालसा पैदा हुई और फिर वे पूछने लगे, "बाबा नानक निरंकारी आज कल कहां रहते हैं? क्या उनके दर्शन हो सकते हैं?"

भाई जोध जी बोले, "उन्होंने कलानौर के परगने में रावी के पार 'करतारपुर' नाम का एक शहर बसाया है। वहीं खेती-बाड़ी करते हैं और संगत को निहाल करते हैं। वे किसी जात-पात के भेद को नहीं जानते और सबको नाम दान की बख्शिश करते हैं। वे सांझी खेती करते हैं और सांझा लंगर चलता है जहाँ सैंकड़ों लोग भोजन करते हैं। मैं भी आमतौर पर उनके पास चला जाता हूँ और सेवा करता हूँ। उन्होंने बहुत वाणी रची हैं, उनकी कुछ वाणी मैंने भी कंठस्थ की है।"

भाई जोध की ये बातें सुन कर भाई लहणा जी के ह्रदय में गुरु दर्शनों की चाहत पैदा हुई। उन्होंने पक्का मन बना लिया कि इस बार जब वे देवी दर्शनों के लिए जाएंगे तब करतारपुर से होकर गुजरेंगे। अब उनके मन में देवी दर्शनों की चाहत कम हो रही थी और सत्गुरु से मिलने की चाहत बढ़ रही थी। वे अपने घर वालों और दोस्तों केसाथ हर समय गुरु नानक देव जी के बारे में ही चर्चा करते रहते थे। भाई जोध से वे अब हर रोज़ ही मिलने जाया करते थे और गुरु घर की साखियां सुन कर बहुत प्रसन्न होते थे।



सत्गुरु दर्शन

भाई लहणा जी को बढ़िया किस्म के घोड़े रखने का बहुत शौक था। उनकी साहूकारी दूर-दूर गांवों में चलती थी, इसलिए उगाही के लिए एक बढ़िया घोड़े का पास होना अत्यावश्यक था। इसके पश्चात् वे हर साल अपने देवी संगियों को साथ लेकर ज्वालामुखी जाते थे।

इस वर्ष भी जब वे अपने साथियों को साथ लेकर ज्वालामुखी चले तब उन्होंने अपना सबसे बढ़िया घोड़ा सजा कर तैयार किया। मूल्यवान दुशालों से श्रृंगार कर वे अपने साथियों के आगे चल पड़े। सभी साथी देवी माता के भजन गाते और जै-जैकार करते आते थे, पर भाई लहणा जी इस बार गहरी सोच में डूबे हुए अपने घोड़े की रासें ढीली करते जाते थे।

करतारपुर के नज़दीक पहुंच कर उन्होंने अपने साथियों से गांव की धर्मशाला में ठहरने हेतु कह दिया और स्वयं घोड़े को ऐड़ी लगाकर करतारपुर की ओर चल पड़े। भाई लहणा जी जवान, फूर्तीले और ताकतवर शरीर के थे। घोड़े पर बैठे वे किसी राजा-महाराजा से कम नहीं लगते थे।

इस बार तो उनका नूर ही अनोखा था, क्योंकि उनके मन में किसी ईश्वरीय ज्योति से मिलने की तमन्ना हिलोरे ले रही थी। अपनी सोच में ही खोये हुए उनको पता ही नहीं चला कि वे किस समय रावी नदी के किनारे जा पहुंचे थे। उन्होंने अपने सामने दरिया देखा जो अपने किनारों से छेड़छाड़ करता हुआ पूरे यौवन पर ठाठें मार रहा था, पर दृढ़ और पक्के इरादों को दरिया कब रोक सके हैं। उन्होंने घोड़े की रासों को ऐसा झटका मारा कि वह दरिया को चीरता हुआ इस तरह पार निकल गया जैसे बाण हवा को चीरता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुंच जाए।

दरिया पार करते ही उनको नया बसा हुआ नगर दिखाई दिया। उन्होंने सीधा उसी तरफ अपने घोड़े को मोड़ लिया। जब वे गांव के बाह्य द्वार पर पहुंचे तब एक ऊँचे, लम्बे, रिष्ट-पुष्ट शरीर वाले वृद्ध को उन्होंने वहां खड़े देखा। उन्होंने इस वृद्ध से गुरु नानक के दरबार का रास्ता पूछा। वृद्ध ने उनको कहा कि वे पीछे-पीछे आएं वे उनको गुरु के दरबार पहुंचा देंगे। गुरु नानक देव जी के दरबार के निकट पहुंच कर, उस वृद्ध ने भाई लहणा जी को एक खूंटे की ओर संकेत करके कहा, "घोड़ा इस खूंटे के साथ बांध दो, सामने गुरु का दरबार है, गुरु जी आपको वहीं मिलेंगे।"

भाई लहणा जी जब दरबार में हाज़िर हुए तब उनको पता चला कि उनको रास्ता बताने वाले स्वयं गुरु नानक देव जी ही थे। वे कुछ घबराए, पर गुरु नानक देव जी मुस्करा कर बोले, "महापुरुषो, आपका क्या नाम है?" भाई लहणा ने कुछ झिझक कर कहा, "जी लहणा।" फिर गुरु नानक जी बोले, "फिर क्या हुआ, लेनदार सदा घोड़ों पर चढ़ कर आते हैं और देनदार पैदल ही चलते हैं।"



सच्चा सिक्ख

गुरु नानक देव जी के दर्शन करके भाई लहणा जी प्रसन्न हो गए और उन्होंने ज्वालामुखी जाने का विचार छोड़ दिया। रात को वे गुरु जी की धर्मशाला में ही सोए और अगली प्रातः होते ही अपने साथियों के पास पहुँच गए और उनको कहा कि अब वे देवी दर्शनों को नहीं जाएंगे क्योंकि उनको असली मंज़िल मिल गई थी।

आप अब करतारपुर में ही रह गए और अन्य सिक्खों की भाँति सेवा में लग गए। कुछ दिन ठहर कर आप फिर संघर पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्होंने अपना सारा कारोबार अपने पुत्रों 'दासू' और 'दातू' को समझा दिया। यहां अब आपका मन नहीं लगता था। एक दिन नमक का एक बड़ा ढेला सिर पर उठा कर और चटाई पार्श्व में दबा कर करतारपुर की ओर चल पड़े।

करतारपुर पहुंच कर उन्होंने नमक का ढेला लंगर में रख दिया और गुरु नानक देव जी के बारे में पूछा। जब उन्हें पता चला कि गुरु जी खेतों की ओर गए हैं तब वे भी उधर ही चल पड़े। वहां जाकर देखा कि गुरु नानक देव जी ने घास की गठरी भर काटी थी परन्तु वर्षा पड़ने के कारण घास भीग गया था। गुरु जी ने वह भीगा हुआ घास भाई लहणा के सिर पर उठा दिया। घास का मैला पानी टपकने से उनके रेशमी कपड़े भीग गए। जब वे घर पहुंचे तो माता सुलखणी जी ने कहा, "इस युवक ने कितने सुन्दर और रेशमी कपड़े पहने थे, आपने इनको गीला घास उठवा दिया है। इनके सारे कपड़े कीचड़ से भीग गए हैं।" माता जी की यह बात सुनकर गुरु जी बोले, "इस युवक के वस्त्रों पर केसर के छीटें पड़े हैं, कीचड़ के नहीं।"

भाई लहणा जी फिर पक्के रुप से करतारपुर रहने लग पड़े। वे तन-मन से सेवा में जुट गए। लगभग सात वर्ष तक1532 से 1539 ई. तक सेवा का कार्य निभाते रहे। वे खेती करते, लगंर तैयार करते, पंखा झुलाते और पानी ढोने आदि की निष्कपट सेवा करते रहे। इसके साथ-साथ वे गुरु जी का कीर्तन और उनके अनमोल वचन सुनते। गुरु नानक देव जी की ओर से उनको जो भी आदेश होता वे सत्यवचन ग्रहण करके उसी समय आदेश पूरा कर देते।

एक दिन गुरु नानक देव जी ने उनसे पूछा, अब कितनी रात व्यतीत हो गई है तो उन्होंने उत्तर दिया, "हे मेरे सत्गुरु! जितनी आपने बिताई बीत गई जितनी आपने शेष रखी है अभी रहती है।"

एक दिन धर्मशाला की दीवार गिर गई। उस समय वर्षा बड़े ज़ोर से पड़ रही थी। गुरु जी ने दूसरे सिक्खों को हुक्म दिया कि दीवार अभी बनाओ, पर सबने यही कहा कि वर्षा बहुत हो रही है, रुक जाने पर बना देंगे, पर जब उन्होंने भाई लहणा जी को कहा तो वे उसी समय बनाने लग पड़े। एक दिन गन्दे कीचड़ में एक बर्तन गिर पड़ा, गुरु जी ने अपने पुत्रों और अन्य सिक्खों को उसे निकालने के लिए कहा, पर गन्दे पानी में छलांग लगाने का किसी का हौसला नहीं हुआ। जब उन्होंने भाई लहणा जी को इशारा किया तो वे तुरन्त छलांग मार कर कटोरा निकाल लाए और साफ -सुथरा करके गुरु जी को दे दिया।



माई विराई

भाई लहणा जी के आचरण और गुरु भाव को देखकर गुरु नानक देव जी समझ गए कि वे अब उनका 'अंग' बन चुके हैं। उन्होंने भाई लहणा जी का नाम अंगद रख दिया और अपनी गद्दी उनको दे दी। गुरु नानक देव जी ने उनको नमस्कार किया और मस्तक नवाया। सब हैरान थे कि जो गुरु नानक देव जी सारी उम्र भर किसी के आगे झुके नहीं थे, अपने ही एक सिक्ख को मस्तक नवा रहे थे, पर अब तो गुरु नानक देव जी और गुरु अंगद देव जी के बीच कोई भेद नहीं रहा था। गुरु नानक देव जी गुरु अंगद देव जी हो गए थे और गुरु अंगद देव जी गुरु नानक देव जी बन गए थे।

गुरुता प्रदान कर गुरु नानक देव जी ने गुरु अंगद देव जी को संघर जाने के लिए कहा। सभी ज़रुरी शिक्षाएं देकर उन्होंने गुरु अंगद देव जी से कहा, "माझे में सिक्खी का प्रचार करना है। एक सच्चे सिक्ख की क्या विशेषताएं हैं, यह आप भली-भान्ति जानते हैं। यह एक पोथी (ग्रन्थ) मैं तुम को सौंपता हूँ इस में ईश्वरीय वाणी है। इस को सम्भाल कर रखना तथा इसके और प्रतिरुप बना कर अपने सिक्खों में बांटना।"

गुरु अंगद देव जी करतारपुर से गुरु नानक देव जी से बिछुड़ना तो नहीं चाहते थे, पर जैसे आदेश था उसका पालन करना था। गुरु नानक देव जी ने विदाई समय उन्हें यह कहा कि संघर में एक माई विराई रहती है, उसके घर हमारा आसन है, पहले उस आसन पर जाकर विराजमान होना।

गुरु अंगद देव जी करतारपुर से चल कर संघर में माई विराई के घर आ विराजे। माई विराई कौन थी? माई विराई जागीरदार तख्तमल की बेटी थी। श्री तख्तमल साठ गांवों के मालिक थे और बाबा फेरुमल किसी समय उनके मुनीम रह चुके थे। माई विराई के सात भाई थे, इसलिए उसको पहले सत्त भराई कहा जाता था जो बाद में बिगड़ता-बिगड़ता सभराई और विराई रह गया। माई विराई बाबा फेरुमल की धर्म-बहन बनी हुई थी। संघर में ब्याही हुई थी और इसने ही भाई लहणा जी का विवाह संघर में करवाया था।

एक बार गुरु नानक देव जी भी संघर में आए हुए थे तो माई विराई ने उनको अपने घर चरण डालने को कहा था तो गुरु जी ने फुरमाया था, "हम आपके घर केवल आएंगे ही नहीं बल्कि कई दिन विश्राम भी करेंगे।"

इस प्रकार गुरु नानक देव जी की दूसरी ज्योति गुरु अंगद देव जी उनके घर

आ ठहरे और माई जी को कह दिया कि किसी को भी उनके यहां आने के बारे में बताना नहीं क्योंकि वे कुछ दिन प्रभु-भक्ति में लीन रहेंगे। माई विराई भी इस बात पर अटल रही और उसने किसी को पता नहीं लगने दिया। जब गुरु जी के महल माता खीवी जी भी पूछने आई तब उनको भी टाल दिया।

गुरु जी सारा दिन भक्ति में लीन रहते और माई विराई उनकी पूरी सेवा करती। एक दिन माई ने गुरु जी के पास विनती करते हुए कहा, "सच्चे पातशाहो, जब गुरु नानक देव जी के रुप में आप यहां आए थे तो आपने वचन किए थे कि मेरे पास ही टिकोगे, पर आपने तो अब जलती दुनिया का कल्याण करने हेतु जाना है, इसलिए मुझे यह वचन दो कि जब आप यहां से जाएं तो मैं अपने प्राण त्याग दूँ और आपके कर-कमलों द्वारा मेरे अन्तिम संस्कार किए जाएँ।" गुरु जी ने माई विराई की अन्तिम इच्छा पूरी करने का वचन दे दिया।



खडूर साहिब में रौनकें

जब गुरु अंगद देव जी माई विराई के कोठे में गुप्त बैठ गए तो सिक्ख बहुत व्याकुल हो उठे। वे जगह-जगह गुरु जी की तलाश करते रहे, पर गुरु जी के बारे में कोई पता नहीं चला। जैसे ही उनको पता चला कि गुरु जी माई विराई के घर गए होंगे तो वे वहां भी जाते, पर माई विराई हाथ जोड़ कर खड़ी हो जाती और कहती, "उनकी वही जाने, मुझ गरीबनी को कोई पता नहीं।" आखिर सारी संगत इकट्ठी होकर बाबा बुड्ढा जी के पास गई और उनसे विनती की कि इस कार्य में वही सहायता कर सकते हैं। बाबा बुड्ढा जी गुरु जी के अलोप हो जाने को लेकर खुद चिन्तित थे। छह महीने बीत चुके थे पर अभी तक गुरु जी के बारे में कोई पता नहीं चला था। बाबा बुड्ढा जी ने संगत की विनती मान ली और पांच सिक्खों और रबाबी बलवंड को साथ लेकर वे ढूंढने चल पड़े। बाबा बुड्ढा जी को पक्का यकीन था कि वे संघर में माई विराई के घर में ही होंगे, इसलिए अपने साथियों को लेकर वे सीधे संघर पहुंच गए।

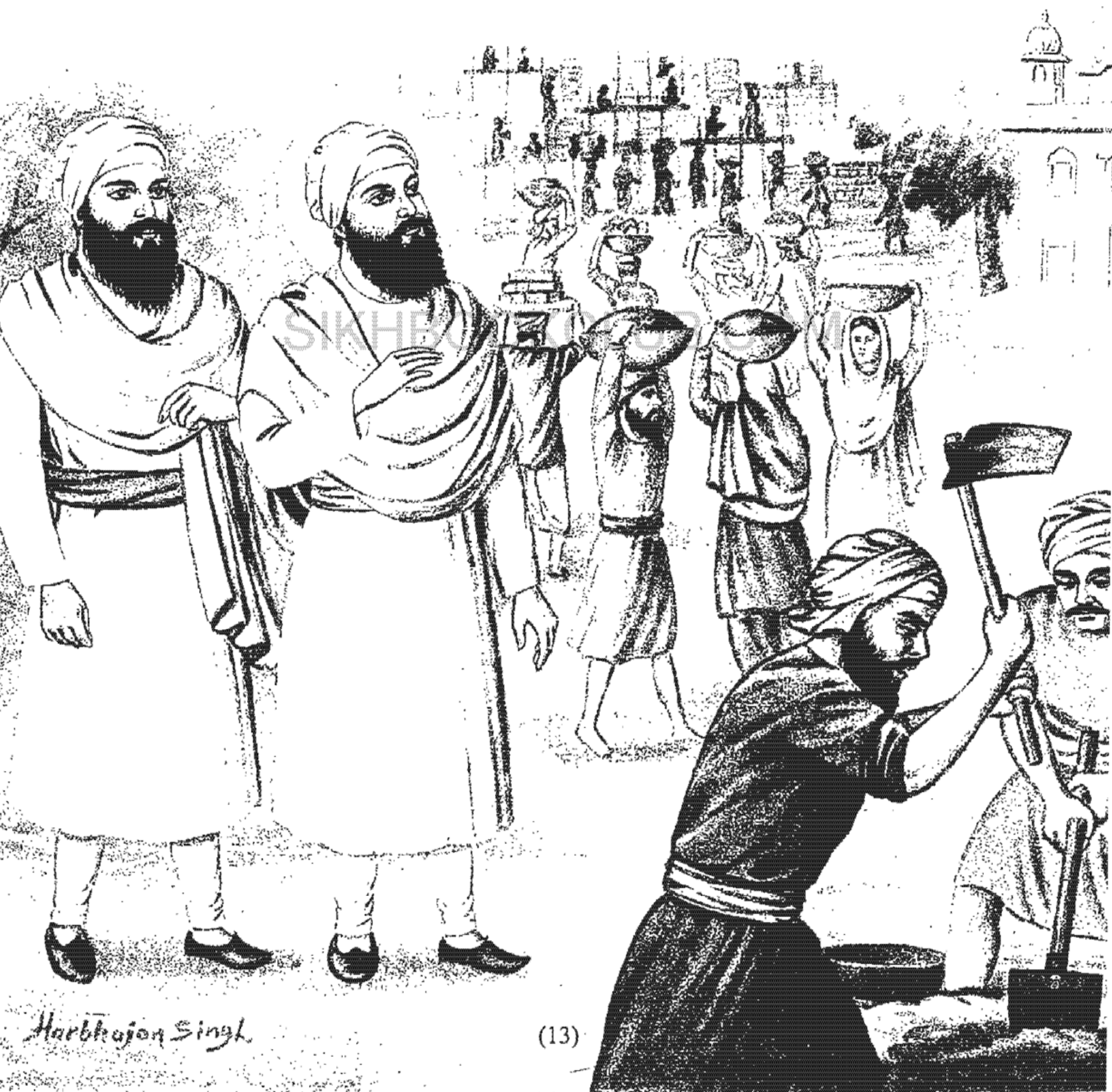
जब माई विराई को यह पता चला कि बाबा बुड्ढा जी स्वयं सिक्खों को साथ लेकर उसके घर की ओर आ रहे हैं, तो वह उनको आगे जा मिली। माई विराई के चेहरे की ओर देखकर बाबा बुड्ढा जी जान गए कि सतगुरु यहीं हैं। जब सभी ने माई को गुरु जी के बारे में पूछा तो वह बोली, "वे स्वयं ही अपने बारे में जानते हैं कि उन्होंने संगत में कब प्रकट होना है, इसलिए हठ ठीक नहीं, हमें उनकी इच्छा अनुसार रहना चाहिए।" यह सुनकर बाबा बुड्ढा जी बोले, "अपने स्वामी को पुकारना इच्छा के खिलाफ नहीं है। यदि आपको बताने की मनाही है तो हम स्वंय ही पता लगा लेते हैं।"

वे अपने साथ रबाबी बलवंड को लाए थे। उन्होंने उसको रबाब बजाने और शब्द का गायन करने के लिए कहा। जब रबाबी ने शब्द गाया तो गुरु जी बाहर आ गए। वे सबको देखकर मुस्कराए और बोले, "आपने असली बात को पा लिया है, यदि गुरु को पाना हो तो कीर्तन करो।"

बाबा बुड्ढा जी ने उनको बाहर चलने की विनती की। गुरु जी अभी बाहर जाने की तैयारी ही कर रहे थे कि माई विराई ने प्राण त्याग दिए। सब हैरान रह गए। गुरु जी ने अपनी निगरानी में माई जी का संस्कार किया। इस कार्य से निपट कर सबने सलाह-मशविरा किया कि गुरु जी को सौंपे हुए कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कहीं डेरा जमाना चाहिए। बाबा बुड्ढा जी ने सलाह की कि गांव खडूर के बाहर एक ऊंचा

टिब्बा है, उस टिब्बे का मालिक भी गुरु का श्रद्धालु सिक्ख है। सिक्खी मिशन को आगे बढ़ाने हेतु वहां ठिकाना बनाना चाहिए। सभी इस बात पर सहमत हो गए और कुछ समय में ही धर्मशाला तैयार हो गई, लंगरखाने बन गए और हज़ारों की संख्या में संगत हर्षोल्लास से खडूर साहिब में आने लग पड़ी।

गुरु नानक देव जी के सिक्ख, जो करतारपुर जाया करते थे, अब खडूर साहिब आने लगे। कुछ समय में ही खडूर साहिब गुरु की नगरी करतारपुर में बदल गया। दूसरे सत्‌गुरु के दर्शनों के लिए पूरे हिन्दोस्तान से सिक्ख आने लगे।



माता खीवी जी

बेआबाद टिब्बे में आलौकिक कीर्तन का प्रवाह चल पड़ा। दीवान लगते और गुरु जी ईश्वरीय वाणी का प्रचार करते। इतिहासकार यह भी लिखते हैं कि गुरु नानक देव जी स्वयं दो बार गुरु अंगद देव जी से मिलने आए। गुरु जी की महिमा दूर-दूर तक पहुंच गई थी और गुरु नानक देव जी के सिक्ख खडूर साहिब में आने लगे।

गुरु जी का तेज़ अब सहन नहीं किया जा सकता था। जो भी उनके एक बार दर्शन कर लेता था, उसका मन शान्त हो जाता था, उसकी सब भटकनें मिट जाती थीं और वह गुरु जी का ही होकर रह जाता था। प्रातःकाल के दीवान का भोग पड़ने के बाद संगत लंगर खाती थीं और फिर सेवा में जुट जाती थीं। कहीं स्कूल बन रहे थे, कहीं कुएं बनाए जा रहे थे, और कहीं पहलवानों के अखाड़े बनाए जा रहे थे। सब अपनी सामर्थ्य अनुसार सेवा कर रहे थे। पर इनमें जो सबसे बड़े सेवा के पुंज थे, वे थे माता खीवी जी। गुरु जी ने आपको लंगर की सेवा बख्शी हुई थी।

माता जी का यह नित्य का क्रम था कि वे पहर रात्रि रहते उठ जातीं, फिर पाठ करके लंगर की सेवा में लग जाती थी।

माता जी बड़े मधुर स्वभाव की थी। वे अपने हाथों से दाल-सब्जियां तैयार करती थी और किसी व्यक्ति को भी भूखा जाने नहीं देती थी। उनकी सेवा-भाव और निष्ठा को देखकर नास्तिक भी पक्के सिक्ख बन जाते थे। रबाबी बलवंड जी उनके मधुर स्वभाव बारे लिखते हैं कि माता जी इतने शीतल स्वभाव की थी जितनी किसी सघन वृक्ष की ठण्डी छाया होती है। उनके पास जो भी आकर बैठता था उसका हृदय शीतल हो जाता था। जिस तरह गुरु जी नाम रस की दौलत बांट रहे थे, उसी तरह माता खीवी जी लंगर में खुले हाथों से भरपूर प्रसाद बांट रही थी। वह किसी के भी साथ भेदभाव (पक्षपात) नहीं करती थीं, घी वाली खीर सबको दी जाती थी। जो भी व्यक्ति माता जी के नज़दीक आता था उसका मुँह खिल जाता था, पर ईर्ष्या करने वालों तथा हठियों के चेहरे पीले पड़ जाते थे। माता जी अपने पुत्रों को भी समझाती थी कि वाणी पढ़ें, अपने हाथों से मेहनत करें और गुरु घर की सेवा में बिना किसी दूसरे भेदभाव के लग जाएं। उनकी दो बेटियां भी थीं, उनको वे वाणी याद करने पर ज़ोर देती। उनके इन प्रयत्नों से ही उनकी बेटियों ने कई कठिन वाणियां भी कंठस्थ कर ली थीं।

माता खीवी जी कभी भी गुरु जी के मार्ग में बाधक नहीं बनीं। जब गुरु जी सात

वर्ष करतारपुर ठहरे थे, तब उन्होंने कभी माथे पर त्योरी नहीं डाली और अपने पतिदेव के हर शब्द को सत्‌वचन करके माना था। गुरु जी की अनुपस्थिति में उन्होंने सारा कारोबार सम्भाल लिया था और घर में कोई झगड़ा नहीं पैदा होने दिया। जब भाई लहणा जी गुरु नानक देव जी के सिक्ख बन गए तो उन्होंने भी सिक्खी मार्ग अपना लिया और गुरु नानक देव जी की वाणी का पाठ करते और प्रभु की इच्छा अनुसार रहने में प्रसन्नता अनुभव करते।



हुमायूं और गुरु जी

बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा बेटा नसीर-उद-दीन हुमायू 26 दिसम्बर, 1530 ई. को आगरा के सिंहासन पर बैठा। वह बड़ा मिलनसार और ज्योतिष विद्या का ज्ञाता था। उसने अभी दस वर्ष भी राज नहीं किया था कि शेरशाह सूरी से उसकी लड़ाई हो गई। इस लड़ाई में 17 मई, 1540 को हुमायूं हार गया और शेरशाह सूरी ने आगरा पर अधिकार कर लिया।

अपनी जान बचाता हुमायूं अपने कुछ साथियों समेत पंजाब की तरफ भाग खड़ा हुआ। भागता-छुपता जब वह लाहौर की तरफ जा रहा था तो रास्ते में उसके दरबारियों ने बताया कि बाबा नानक की गद्दी पर जो एक पहुँचा हुआ फकीर बैठा है, उसका डेरा नज़दीक ही है। दरबारियों की यह बात सुन कर हुमायूं को कुछ हौसला मिला। यह बात वह अच्छी प्रकार जानता था कि बाबा नानक उसके पिता बाबर को मिले थे। बाबर को गुरु नानक जी ने कुछ शिक्षाप्रद शब्द कहे थे, जिसके ऊपर चलने की उसने सौगन्ध खाई थी। हुमायूं ने अपनी सेना को वहीं सड़क से कुछ दूर पड़ाव डालने का आदेश देकर स्वयं खडूर साहिब की ओर चल पड़ा। उनके साथ चुने हुए कुछ सेवकों के साथ उनकी बुद्धिमती बहन गुलबदन भी थी।

हुमायूं जब खडूर साहिब पहुंचा तो उसने सोचा कि गुरु नानक की गुर-गद्दी पर बैठने वाला फकीर किसी छोटे-मोटे मकान या झोंपड़ी में रहता होगा, परन्तु जब खडूर साहिब आकर उसने गुरु नानक के वारिस बारे पूछा तो गांव के लोगों ने बताया कि उनका दरबार उच्चे टिब्बे के ऊपर विद्यमान है। हुमायूं घोड़ा भगाता हुआ अपने सेवकों समेत दरबार के निकट जा पहुंचा। उस समय दरबार लगा हुआ था और गुरु जी ईश्वरीय वाणी की व्याख्या कर रहे थे। दरबार के बाहर कुछ सिक्ख खड़े थे। उन्होंने घोड़ों पर चढ़े कुछ लोगों को आते हुए देखा तो रुकने को कहा।

एक दरबारी, जो पंजाब का रहने वाला था, ने उन सेवादारों को कहा कि बादशाह हुमायूं गुरु अंगद देव जी से मिलना चाहता है। उन सेवादारों ने कहा कि अभी दरबार लगा हुआ है गुरु जी किसी को नहीं मिल सकते, परन्तु यदि तुमने सत्संग सुनना है तो पैदल अन्दर जाकर धरती पर बैठ सकते हो। पर हुमायूं ने यह बात स्वीकार नहीं की और घोड़ों पर ही सवार खड़े रहे। जब सत्संग समाप्त हुआ तो बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं को बाहर निकलता देख हुमायूं बहुत हैरान हुआ। फिर वे घोड़ों से उतर

कर दरबार में गुरु जी के सन्मुख हुए। गुरु जी उस समय कुछ सिक्खों के साथ सलाह-मशविरा कर रहे थे। जब काफी समय उन्होंने हुमायूं की तरफ नहीं देखा तब हुमायूं क्रोध में आकर म्यान में से तलवार निकालने लगा। गुरु जी ने जब नज़र भर कर उसकी ओर देखा तो हाथ तलवार की मूठ पर ही रह गया। गुरु जी ने फुरमाया, "हुमायूं इस तलवार को शेरशाह सूरी के सामने निकालना था, फकीरों के ऊपर तलवार चलाना कोई बहादुरी नहीं है। हुमायूं शर्मिन्दा हो गया और वहां से ही वापिस मुड़ गया। आर्शीवाद लेने आया था, एक विलक्षण शिक्षा लेकर चला गया।"




भाई माहणा

हुमायूं ने जो शिक्षा गुरु जी से ली, उसने उसकी जिन्दगी ही बदल दी। उसको यह पता चल गया था कि वह एक डरपोक था, बुज़दिल था, इसी कारण वह हारा था। कई बार गुरु जी का गौरवमय चेहरा उसकी आंखों के सामने आता और उसको बार-बार यह प्रेरणा मिलती कि बहादुर का काम है अपने से भी बड़े शत्रु से लड़ना। इस प्रेरणा के बल से वह सफल भी हुआ और एक बार फिर आगरे के सिंहासन का स्वामी बना।

गुरु जी के व्यक्तित्व का यही बड़ा पहलू था कि हर व्यक्ति को कुछ शब्दों में ही एक बड़ी शिक्षा दे देते थे।

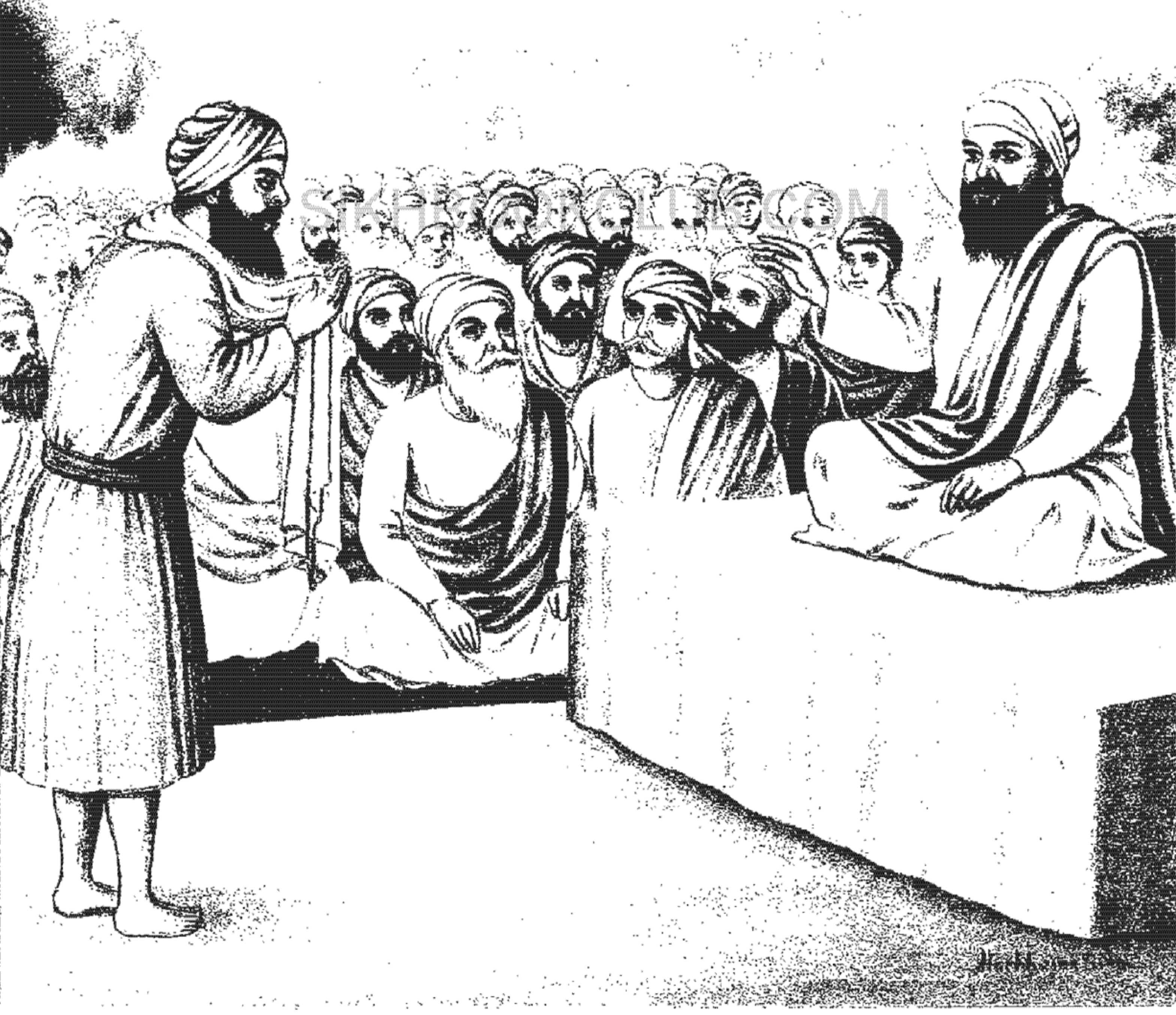
इस प्रकार की ही एक और घटना घटी। भाई माहणा लंगर की सेवा करता था, वह एक अनथक सेवक था और हर समय सेवा में ही जुटा रहता था। वह इतनी सेवा करता था कि उसको यह घमण्ड हो गया कि उससे अच्छा कोई और सेवादार नहीं है। वह सेवा तो करता पर प्रत्येक से बदसलूकी से पेश आता। यदि उससे कोई वस्तु मांगता तो वह आगे से कहता, "मैं आप जैसे कंगालों का नौकर नहीं हूँ , मैं गुरु का सेवक हूँ,उनका ही मैं सेवादार हूँ।"

सिक्खों ने जब उसके ऐसे दुर्व्यवहार की शिकायत गुरु जी के पास की तो गुरु जी ने उसको समझाया कि उसको अपने व्यवहार को ठीक करना चाहिए और हर व्यक्ति को बराबर समझना चाहिए। परन्तु गुरु जी के समझाने से वह और भी उद्दण्ड हो गया और वह सिक्खों को कहने लगा कि वह कई वर्षों से दिन-रात सेवा करता आ रहा है पर यह भूखे उसकी शिकायतें करते हैं। इसके बाद जब कोई ज़रुरतमंद उससे कुछ मांगता तो वह कह देता मेरे पास कुछ नहीं है, गुरु जी के पास जाकर ले लो, जिनके पास मेरी शिकायतें करते हो।

जब गुरु जी को उसके इस रवैये बारे पता चला तो उन्होंने उसको बुलाया और कहा, "भाई माहणा! तुम्हारी सेवा की हमें कोई ज़रुरत नहीं है। जो सिक्खों से प्यार नहीं करता, वह गुरु से कभी प्यार नहीं कर सकता।असली सेवा वह है जो ज़रुरतमंदों की की जाए।" भाई माहणे को अक्ल आ गई और उसका सारा अहंकार जाता रहा। उसने गुरु जी से क्षमा मांगी और भविष्य में हर व्यक्ति से बड़े प्यार से व्यवहार करने का वायदा किया। भाई माहणे को देखकर शेष सिक्खों को असली सिक्खी मार्ग का

ज्ञान हो गया। गुरु जी ने सब श्रद्धालुओं को समझाते हुए कहा, "सिक्ख का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है ज़रुरतमंद की सेवा करना, काम, क्रोध, मोह, लोभ और अंहकार को त्याग कर निमरता वाला जीवन व्यतीत करना। जो अंहकार करता है और अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ समझता है, वह भूल में है। प्रभु ने सब व्यक्ति समान पैदा किए हैं। सारे वर्ण एक समान हैं। कोई ऊँचा, नीचा, अछूत या नीच नहीं है। वास्तव में जो झुका हुआ है वही ऊँचा है, वही महान है।"

गुरु साहिब की यह शिक्षा सुन कर सब सिक्खों ने शीश झुकाया, गुरु जी की शिक्षा का ही यह प्रभाव था कि गुरु अंगद देव जी के दरबार में कई बड़े पूजनीय सिक्ख हुए थे। भाई गुरदास,जी ने इन सभी प्रतापी कमाई वाले सिक्खों का अपनी 'वारों' में वर्णन किया है।



मलूका शराबी

खडूर साहिब में एक जवाहर लाल नाम का चौधरी रहता था। बहुत ज्यादा शराब पीने के कारण लोग उसको मलूका शराबी कहते थे। जब गुरु जी की कीर्ति दूर-दूर तक फैलने लगी और बड़े-बड़े यती और सन्त-महात्मा उनके दरबार में आने लगे तो वह बहुत ईर्ष्या करने लगा। वह नित्य गुरु जी की संगतों को तंग करने लगा। कई बार शराब पीकर वह श्रद्धालुओं को गालियां भी निकालता। जब सिक्ख गुरु जी के पास शिकायत करते तो वे कहते, "सिक्खों प्रभु की रजा में रहना सीखो, यदि कोई बुरा कर्म करता है तो हमें भी बुरे नहीं हो जाना चाहिए। जिस प्रकार कोई कर्म करता है वैसा ही फल पा लेता है, तुम उसकी बातों की ओर ध्यान न दो।"

कुछ समय के पश्चात् अधिक शराब पीने के कारण मलूके को मिरगी पड़नी शुरु हो गई। मलूके को इस रोग ने बहुत दुःखी कर दिया। गांव के लोगों ने उसको समझाया कि गुरु अंगद देव जी ईश्वरीय जोत हैं, तुम उनकी निंदा करते रहे हो इसलिए तुमको इस रोग ने घेर लिया है, परन्तु वे फिर भी दयावान हैं। अमृत बेला में वे जिसको नज़र भर के देख लेते हैं, उसके सारे रोग दूर हो जाते हैं, पर जो उनके चरणों में गिर पड़ता है उसका बेड़ा पार हो जाता है।

लोगों के समझाने पर मलूका गुरु जी के दर्शनों के लिए गया। उसने गुरु जी को अपनी बीमारी बारे भी बताया। गुरु जी उस पर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, "चौधरी जी! अब शराब छोड़ दो, मिरगी उसी दिन से बन्द हो जाएगी।" मलूके ने गुरु जी की बात को मान लिया और उसने शराब छोड़ दी। अगले दिन से मिरगी पड़नी बन्द हो गई और मलूका निरोग हो गया। अब वह गुरु जी के सिक्खों को गालियां निकालने की बजाय उनकी सेवा करने लगा। पर जब एक जोगी ने देखा कि मलूका तो अब गुरु का सिक्ख ही बन गया है तो उसने मलूके से कहा, "चौधरी! शराब का मिरगी से सम्बन्ध नहीं है, हम जोगी हर रोग बारे जानते हैं और उसके इलाज़ का भी हमें ज्ञान है। आप इस इलाके के चौधरी हो, खाना-पीना तो आपका अधिकार है, इसलिए शराब पीओ, मांस खाओ इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उस जोगी ने यह भी कहा कि गुरु जी तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगे।

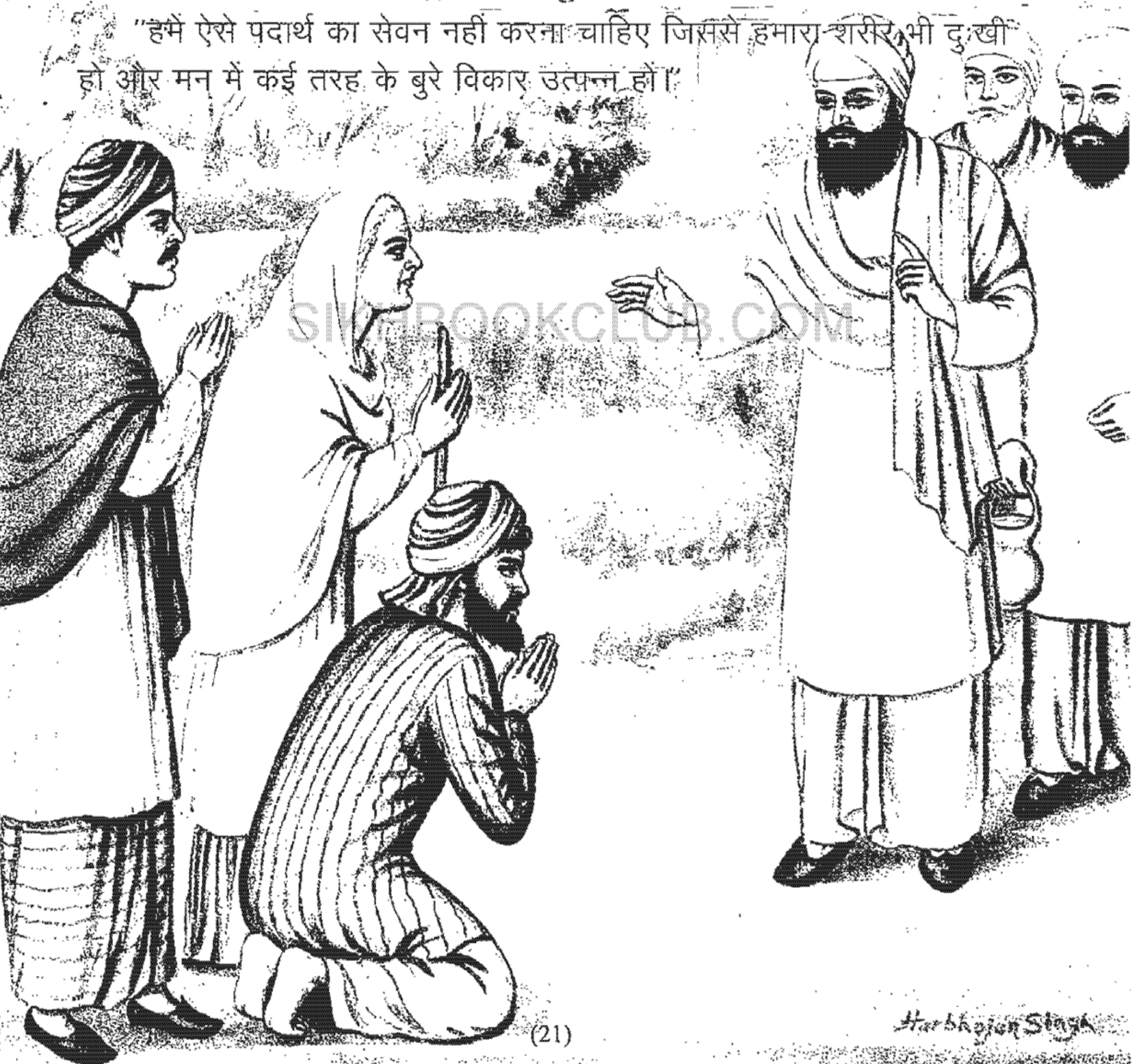
मलूका जोगी की बातों में आ गया और उसने अगले दिन फिर शराब पी ली। वह शराब उसको इतनी चढ़ी कि वह चक्कर खाकर कोठे से नीचे गिर कर मर गया।

जब गुरु जी को उसकी मृत्यु का पता चला तो उन्होंने सारी संगत को अलाहणिया (वाणी) का पाठ करने को कहा ताकि कोई सिक्ख बुरी आदत और बुरी संगत ग्रहण न करे। सब लोग समझ गए थे कि जो सत्तगुरों के वचन नहीं मानता, उसका यही हाल होता है।

अगले दिन गुरु जी ने सत्संग के बीच सारी संगत को सम्बोधित करते हुए कहा, "हमें नशों से बचना चाहिए। किसी भी प्रकार का नशा ठीक नहीं है।" सत्गुरु गुरु नानक देव जी ने

बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ॥
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकारि ॥

"हमें ऐसे पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए जिससे हमारा शरीर भी दु:खी हो और मन में कई तरह के बुरे विकार उत्पन्न हों।"



हेमू बणिया

हेमू बणिया सलेम शाह का एक वफ़ादार सेवक था। वह बहुत चतुर चालाक और हैंकड़ीबाज था। एक बार उसको पता चला कि गुरु नानक देव जी की गद्दी पर गुरु अंगद देव जी बैठे हैं और उनका डेरा लाहौर को जाने वाली मुख्य सड़क के निकट खडूर साहिब में है। वह किसी भी तरह दिल्ली का बादशाह बनना चाहता था। उसके एक साथी ने बताया कि गुरु अंगद देव जी जिसके ऊपर भी अपनी दिव्य दृष्टि डाल देते हैं वह मुंहमांगी मुराद पा लेता है। हेमू बणिए को और क्या चाहिए था, उसने कहा, "इन साधु फकीरों की दिव्य दृष्टि डलवानी कौन सी कठिन बात है, इनको प्रसन्न करने से सब चीजें प्राप्त की जा सकती हैं। मैं अब एक बादशाह के मुख्य सेवकों में से एक हूं , मैं उनको कई गाँव बतौर दान दे सकता हूँ , उनको एक बड़ी जागीर मिल जाएगी वह क्यों नहीं प्रसन्न होंगे ?"

वह अपने कुछ साथियों को लेकर खडूर साहिब पहुंच गया। एक लम्बे सफ़र से आने के कारण हेमू को भूख लगी हुई थी इसलिए उसने कुछ सिक्खों को बुलाकर उनको आदेश दिया कि हमारे लिए ताजा लंगर तैयार करके लाया जाए। उसने खाना तैयार करने वाली सब्जियों आदि का ब्यौरा बता दिया और रोब पूर्वक यह भी कह दिया कि खाना तैयार करने में जो भी खर्चा आएगा वह आप अदा करेगा। इस कार्य हेतु उसने कुछ अशर्फियां सेवादारों को पेश कीं।

लंगर के मुख्य सेवादार ने उसकी ये बातें सुनीं और दो-टूक जवाब देते हुए कहा, "यह गुरु का लंगर है, यहां जो तैयार होता है, वही खाना पड़ता है और लंगर सेवन करने का कोई मूल्य नहीं है।"

हेमू इस बात पर बहुत नाराज़ हुआ। फिर उसने गुरु जी के दर्शन करने की आज्ञा मांगी। इस बारे सेवादार ने कहा कि गुरु जी केवल यथा समय ही मिल सकते हैं। किसी को अलग से विशेष दर्शन नहीं देते। यह बात सुन कर हेमू बड़े क्रोध में आकर कड़कता हुआ बोला, "आप को पता नहीं है मैं हिंदोस्तान के बादशाह का वजीर हूँ, मैं जो जी में आए कर सकता हूँ, मेरे पास सेना है, धन है, दौलत है, अधिकार है।" पर सिक्खों ने उसकी किसी बात पर ध्यान नहीं दिया। ठीक वक्त पर उसे गुरु जी से मिलाया गया। गुरु जी के पास भी उसने बहुत डींगें मारीं और कहा, "मैं इस इलाके के पचास गाँव आपके डेरे के नाम करने आया हूँ ताकि लंगर चलता रहे और आपको

किसी बात की कमी न आए।"

गुरु जी ने कहा, "यह लंगर जागीरों से नहीं चला करते, आप अपनी जागीरें अपने पास ही रखिए। आज इस जागीर के आप मालिक हो, कल को कोई और हो जाएगा। यह धन दौलत किसी के साथ नहीं गया, केवल ईश्वर का नाम ही साथ देता है।"

हेमू बणिए का सारा क्रोध जाता रहा और बड़े मीठे वचनों में वह कहने लगा, "महापुरुषो! मुझ से भूल हो गई है, दास जान कर क्षमा कर दें। मैं दस गाँव आपके नाम करने आया हूँ, मेरी विनती स्वीकार कर लें।" पर गुरु जी ने इन्कार करते हुए कहा, हेमू, यह धरती किसी की नहीं है और न ही यह किसी के साथ जाती है।

हेमू क्रोध का भरा हुआ वहां से चला गया।



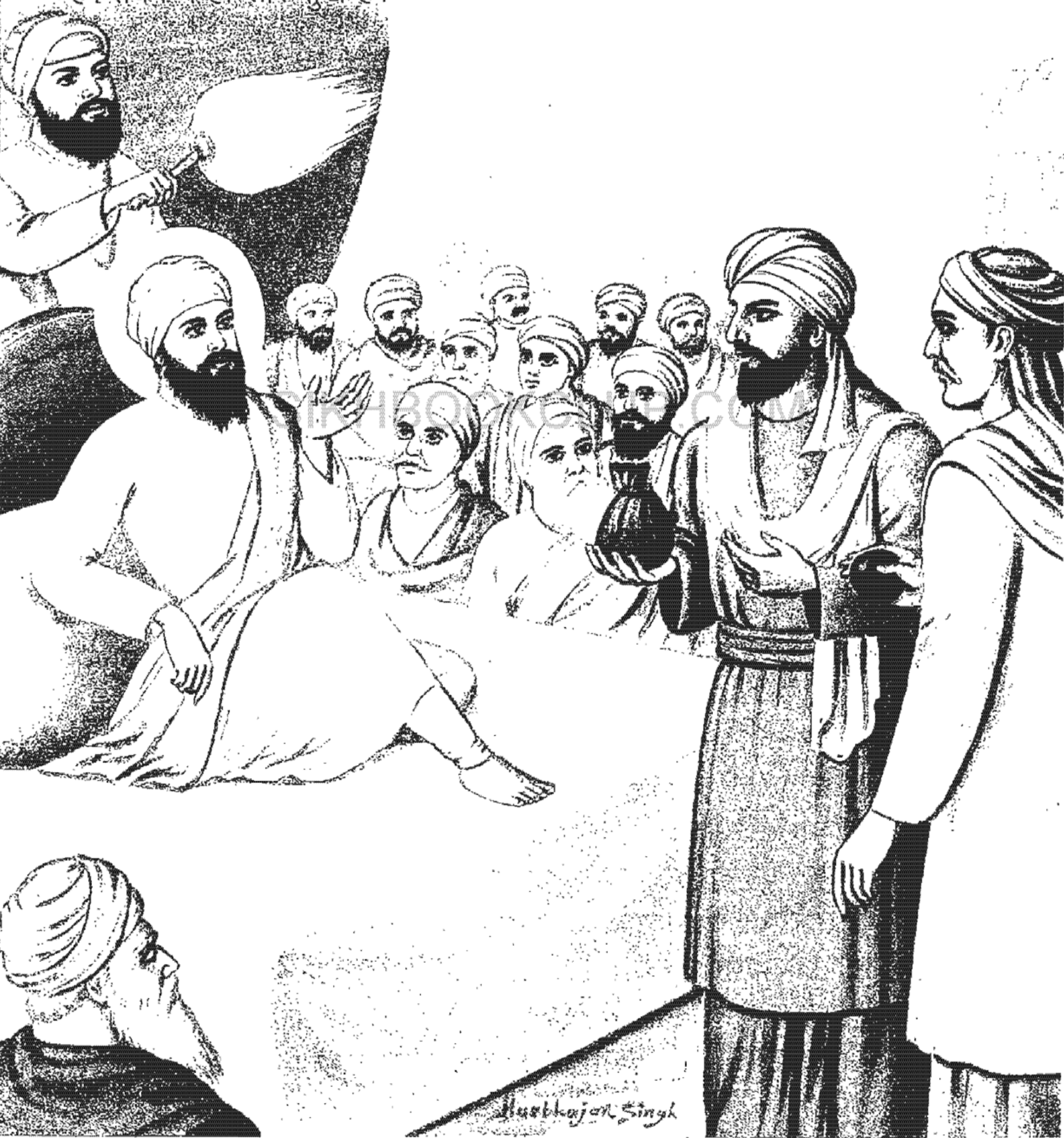
गुसाईं देव गिरि

हेमू बणिए का अहंकार तो टूट गया, पर हिंदोस्तान का बादशाह बनने की उसकी कामना खत्म नहीं हुई। इस कार्य हेतु उसने कई पापड़ बेले। पहले वह मुसलमान बन गया, फिर बिक्रमजीत नाम रख कर बादशाह बन गया, पर कुछ ही समय के बाद पानीपत की दूसरी लड़ाई में अकबर के जरनैल बैरम खां के हाथों कुत्ते की मौत मारा गया। वही धरती, जो वह गुरु के लंगर के नाम लगाना चाहता था, अकबर बादशाह की हो गई।

उन दिनों में ही देव गिरि नामक एक गुसाईं अपने कुछ साथियों को लेकर खडूर साहिब पहुंच गया। यहां आकर उसने देखा कि दिन-रात लंगर चलता है, दरबार लगता है, प्रभु कीर्तन होता है और सारे सिक्ख बड़े प्रेम के साथ सेवा कर रहे हैं। यह सब देख कर वह बहुत प्रभावित हुआ और उसने भी यह इरादा बनाया कि अपनी जिंदगी की कमाई गुरु जी को अर्पण करे। उसने एक पोटली गुरु जी के आगे भेंट की और कहा, ''इस पोटली में पारा मार कर रखा गया है, इस पारे से यदि तांबे को रगड़ा जाए तो वह झट सोना बन जाता है।'' जब कुछ सिक्खों ने इस बारे संदेह प्रकट किया तो उसने एक सुनार को बुलवाया और कसौटी पर रख कर उसकी पुष्टि कर दी। देव गिरि अपने इस कौतुक पर बहुत खुश हुआ और बोला, ''महाराज! आपको धन की बहुत ज़रुरत है, मैं आप को भी सोना बनाने की विधि बतला देता हूँ, आप जितना मर्जी सोना बनाओ और अटूट लंगर चलाओ।'' गुरु जी मुस्कराए और उन्होंने फुरमाया, ''गुसाईं ! हमें धातु मारने की ज़रुरत नहीं है, मन मारने की ज़रुरत है, मन मारने से धातु अपने आप ही मर जाती है। हम जितनी भी कामना बढ़ाएंगे, लालसा और बढ़ती जाएगी, आप ने हेमू बणिए के बारे में सुन ही लिया है, कि वह एक बादशाह बनता-बनता कुत्ते की मौत मर गया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अंहकार ने हमें अपने पंजे में जकड़ रखा है। हमें इस सांसारिक आग से बचना चाहिए। हमने लंगर कमाई के लिए नहीं लगाए हैं, यह तो मनुष्य के मन की मैल उतारने के लिए है। हर मनुष्य को यह अभिमान है कि वह ऊंची जाति का है, धनवान है, पर यहां आकर सब बराबर हो जाते हैं। मनुष्य को यह पता चलता है कि हम मानव जीव केवल एक ही प्रभु की सन्तान हैं। ये लंगर सच्ची किरत कमाई से चलते हैं। आप यदि अपनी किरत करके किसी ज़रुरतमंद को भोजन कराओगे तो वह सबसे बड़ा परोपकार होगा और आपको

इस पोटली के धन की प्राप्ति से ज्यादा खुशी मिलेगी।

गुरु जी के यह वचन सुन कर गुसाईं देव गिरि को ऐसा ज्ञान मिला कि वह गुरु घर का ही होकर रह गया। सारे श्रद्धालुओं पर भी इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा। उनको यह ज्ञान हो गया कि दस नाखूनों की मेहनत में ही वास्तविक खुशी है। इन्सान जितना अमीर और धनवान होता जाता है, उसके दुःख भी उसी हिसाब से बढ़ते जाते हैं। संयम में ही सारे सुख हैं।



विरसे की सम्भाल

गुरु नानक देव जी ने जब गुरु अंगद देव जी को गद्दी सौंपी थी तो उन्होंने साथ ही एक पोथी भी सुपुर्द की थी। यह शब्द खज़ाने के रुप में थी। गुरु नानक देव जी ने यह भी आदेश दिया था कि शब्द करते रहना और इसका नित्य प्रचार किया करना।

इस बात को कार्यरुप देने हेतु गुरु जी नित्य दरबार लगाते थे। गुरबाणी का कीर्तन होता था और गुरु जी सत्संग भी करते थे। इस पोथी की उन्होंने कई प्रतिलिपियां भी बनवाईं, पर असली पोथी उन्होंने अपने पास रखी। जब उनको भी ईश्वरीय वाणी उद्भूत होती थी तो वे भी लिखकर उस पोथी में संकलन कर लेते थे।

जहां तक बोली का प्रश्न था कि यह वाणी किस बोली में लिखी जाए, इस बारे गुरु नानक देव जी बड़ी ज़ोरदार आवाज़ पहले ही उठा चुके थे। उन्होंने हमेशा पराई बोली थोपे जाने का विरोध किया था। उन्होंने पंजाबी बोली का आदर किया और इस बोली में ही गहरा दर्शन वर्णन किया। गुरु नानक देव जी ने पंजाबी बोली हेतु लिपि भी वही अपनाई जो पंजाबी लिखने के अनुकूल थी।

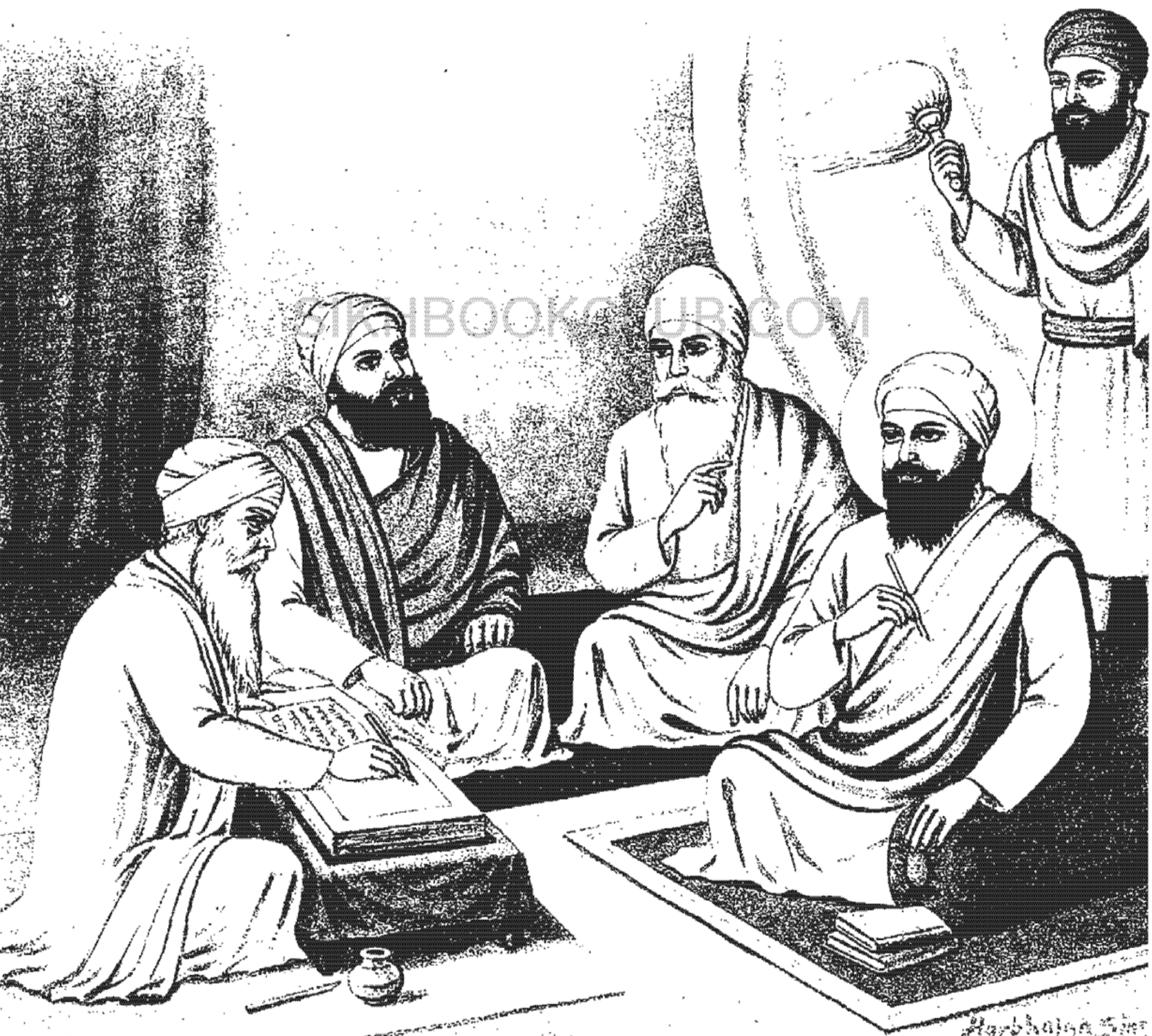
गुरमुखी लिपि गांवों में प्रचलित थी पर संस्कृत और बाद में फारसी का बोलबाला होने से यह लिपि केवल गंवारों की बन कर रह गई। गुरु ने फिर इसको मान दिया और यह लिपि गुरमुखों की बन गई। गुरमुखों की लिपि बनने से इसका नाम गुरमुखी हो गया।

गुरु अंगद देव जी ने इस लिपि को और संवारा और इसकी पढ़ाई हेतु एक स्कूल खडूर साहिब में खोल दिया। उस स्कूल में बच्चे ही नहीं बल्किबाहर से आए सिक्ख भी पढ़ते थे। हर सिक्ख के लिए इस बोली को पढ़ना आवश्यक हो गया था। गुरु अंगद देव जी ने इस तरह सिक्ख धर्म के प्रचार को नियमबद्ध मज़बूती प्रदान की।

गुरु नानक देव जी की जीवनी भी सिक्खों का एक बड़ा विरसा थी और उन्होंने इन अमूल्य जीवन साखियों से बहुत शिक्षा प्राप्त करनी थी। गुरु अंगद देव जी करतारपुर में सात वर्ष रह कर गुरु नानक देव जी की काफी साखियां सुन चुके थे और इन शिक्षाप्रद साखियों को वे दरबार में प्रमाण के तौर पर सुनाया भी करते थे। पर सभी साखियों को एक जगह् एक करना ज़रुरी था। इस हेतु गुरु जी ने गुरु नानक देव जी के सारे पुराने सिक्खों को खडूर साहिब बुलाया। भाई पैड़ा मोखा गुरमुखी लिपि का बहुत माहिर था और वह सुलतानपुर लोधी रहता था। गुरु जी ने उसको बुला भेजा। इन सिक्खों

में भाई बाला भी था जो कि गुरु नानक देव जी का बचपन का साथी था। गुरु नानक देव जी के जीवन को उसने आंखों देखा था।

गुरु अंगद देव जी पहले साखी सुन लेते थे फिर उसको पैड़े मोखे को लिखवाते थे। एक वर्ष के अन्दर सारी जन्म साखी तैयार हो गई। गुरु जी ने बाद में इसकी और प्रतिलिपियां भी बनवाईं। इन साखियों की बोली इतनी मधुर और रोचक है कि बच्चे भी इन साखियों को पढ़ कर केवल शिक्षा ही प्राप्त नहीं करते बल्कि आनन्दित होते हैं। इन साखियों में बाद में बेशक कुछ घट-बढ़ हुई थी, पर इनमें निहित आध्यात्मिक ज्ञान को कोई नहीं नकार सकता।



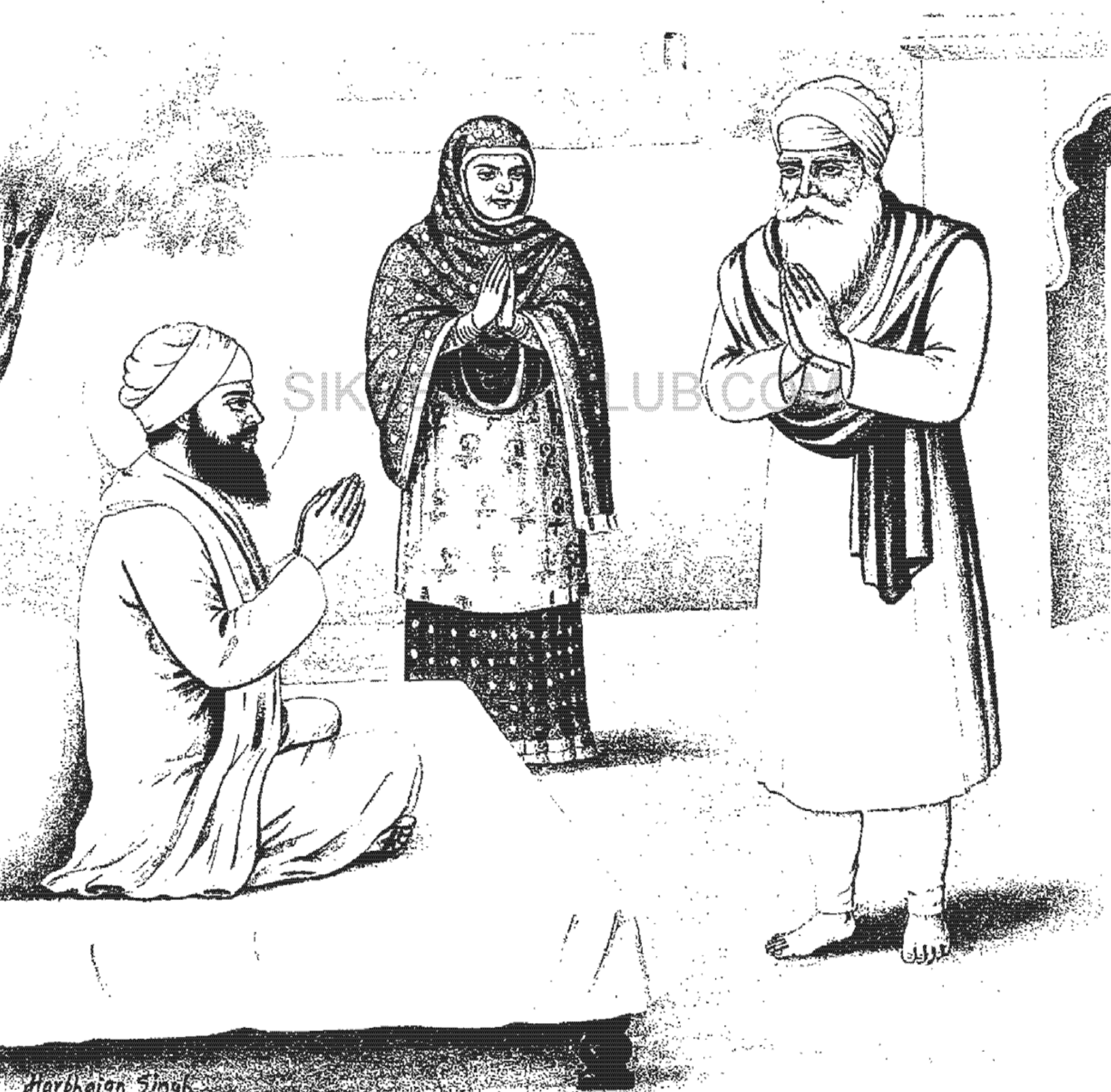
बाबा अमर दास जी

बाबा अमर दास जी ज़िला अमृतसर के बासरके गाँव के रहने वाले थे। आप बड़े धार्मिक विचारों के थे और हर वर्ष हरिद्वार में स्नान करने के लिए जाते थे। एक बार जब आप हरिद्वार से स्नान करके वापिस आ रहे थे तो आपका एक दुर्गा पंडित से मेल हुआ। दुर्गा पंडित ने जब उनके पैरों में पद्म का चिन्ह देखा तो उसने कहा कि या तो आप चक्रवर्ती राजा बनेंगे या दुखों और अज्ञान की आग में जल रही दुनिया का सहारा बनेंगे। अगले दिन बाबा जी को एक ब्रम्ह्मचारी मिल गया। ब्रह्ममचारी उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व को देख कर बहुत प्रभावित हुआ और उसने पूछा कि आपका गुरु कौन है और आप किसके शिष्य हो ? बाबा जी ने कहा कि मैं तो आज तक उसको ढूंढ रहा हूँ पर मुझको गुरु नहीं मिल रहा। ब्रह्मचारी एकदम उनसे परे हट गया और कहने लगा कि मैं गुरुहीन का संग नहीं करता। ब्रह्मचारी के ये वचन बाबा जी को ज़ख्मी कर गए। उनको अब रात-दिन नींद नहीं आती थी कि सच्चे गुरु का किस प्रकार मेल हो।

गुरु अंगद देव जी की सुपुत्री बाबा अमरदास जी के भाई माणक चन्द के सुपुत्र से ब्याही हुई थी। दोनों भाईयों के घर साथ-साथ थे। प्रातःकाल नित्य बाबा जी को अपने भाई के घर से गुरबाणी पढ़ने की आवाज़ आती। बाबा जी उस घर जा तो नहीं सकते थे, दीवार के साथ कान लगाकर सुनते रहते। एक दिन सवेरे गुरबाणी पढ़ने की आवाज़ नहीं आई, तो बाबा जी ने अपनी भाभी से इसका कारण पूछा। उनकी भाभी ने बताया कि बीबी अमरो के पिता जी गुरु अंगद देव जी, गुरु नानक देव जी की गद्दी पर बैठे हैं। बीबी अमरो गुरु नानक देव जी की बाणी का ही पाठ करती है। आज वह खडूर साहिब अपने पिता जी के पास गई है।

बाबा अमर दास जी को बहुत प्रसन्नता हुई और जब बीबी अमरो वापस बासरके आई तो उन्होंने गुरु जी से मिलने की इच्छा प्रकट की। बीबी अमरो उनको खडूर साहिब में गुरु अंगद देव जी के पास ले गई। गुरु जी को जब पता चला कि उनके सम्बन्धी बाबा अमर दास जी उनको मिलने आए हैं तो वे आप को लेने बाहर आए। गुरु जी को स्वयं बाहर आते देख कर बाबा जी उनके चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे, "मैं आपका दास हूँ।" बाबा जी जब कुछ दिन वहां रहे तो वे संगतों का अपरिमित प्यार और सेवा भाव को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुए। आप जी ने भी सेवा सम्भाल

ली। नित्य ब्रह्म मुहूर्त्त में उठते और ब्यास नदी से पानी लाकर गुरु जी को स्नान करवाते। ब्रह्म मुहूर्त्त में ही पाठ करते और फिर दरबार में जाकर गुरु जी का सत्संग सुनते। फिर गुरु जी द्वारा चलाए गए स्कूल में पढ़ाई करते। गुरु जी के साथ उनका इतना प्रेम हो गया कि वे कुछ क्षण भी उनसे दूर नहीं रहना चाहते थे। हर वक्त उनकी सेवा में रहते। जब भी समय मिलता तो वे गुरबाणी को कंठस्थ करते।



ईर्ष्यालु तपा

उस समय खडूर साहिब में एक शिवनाथ नामक योगी तपा रहता था। वह अपने मन्त्रों-तन्त्रों से गाँव वासियों को खूब लूटता था, पर जब से वहां गुरु जी आए थे लोग सिक्ख मत्त को मानने लग पड़े थे और मन्त्रों-तन्त्रों की परवाह नहीं करते थे, पर फिर भी अनपढ़ लोग उसकी बात मान लेते थे।

एक बार बारिश नहीं हुई। फसलें बर्बाद हो गईं या बोई ही नहीं गईं। लोग त्राहि-त्राहि कर उठे। गुरु जी उन लोगों को प्रभु का भाणा मानने के लिए कहते, परन्तु लोग अपना धैर्य खो बैठे। हार कर लोग तपे के पास गए। गाँव वासियों को अपने पास आया हुआ देखकर उसने कहा, "और पूजो उस गृहस्थी को, बारिश तब तक नहीं पड़ सकती जब तक यह गृहस्थी गाँव छोड़ कर नहीं चला जाता।" गुरु जी को जब इस बात का पता चला तो वे चुपचाप गाँव छोड़ कर खान रज़ादा के क्षेत्र में एक एकान्त जगह् पर पहुंच गए। उस गाँव के लोगों को जब वहां गुरु जी के आने का पता चला तो सारे इकट्ठे होकर गुरु जी से मिलने आए। उन्होंने यथाशक्ति गुरु जी की बहुत सेवा की। अब वहां भी दरबार लगने लगा और शब्द कीर्तन की लहर चल पड़ी।

जब गाँव के लोगों को पता चला कि गुरु जी गाँव खान रज़ादे में चले गए हैं तो वे फिर तपे के पास गए कि गुरु जी तो निवास छोड़ कर चले गए हैं तुम अब बारिश करवाओ, पर तपा आगे से अकड़ कर कहने लगा, "बारिश मेरी मुट्ठी में बन्द हैं, मैं जादू मन्त्र पढ़ता हूँ, तुम मांगी हुई सामग्री ले आओ। जब यज्ञ पूरा हो जाएगा बारिश आ जाएगी।" लोगों ने उसी प्रकार किया जैसे तपे ने कहा, पर यज्ञ पूरा होने पर भी बारिश नहीं हुई। लोग बहुत दुःखी हुए कि गुरु जी को गाँव से बाहर जाने के लिए भी कहा और बारिश भी नहीं हुई।

बाबा अमर दास जी कुछ दिनों के लिए गाँव बासरके गए हुए थे जब वे वापिस आए तो सारी संगत ने उनको पूरी घटना से अवगत कराया। यह बात सुन कर उन्होंने गाँव वालों को झाड़ लगाई कि इतने वर्ष बीत जाने पर भी तुम लोग सच्चे गुरु को पहचान नहीं पाए हो। वे सारी शक्तियों के स्वामी हैं, पर प्रभु की रज़ा में रहना, प्रभु लीला को मानना सच्चे भक्त का धर्म है। तुम केवल बारिश ही चाहते हो, चलो इस तपे को रस्सा डालो और घसीट कर जिस खेत में ले जाओगे वहीं बारिश आ जाएगी। लोगों को और क्या चाहिए था, उन्होंने तपे को रस्सा डाल दिया। रस्सा डालते ही

आकाश पर बादल छा गए। जब वे तपे को घसीटने लगे तो बारिश आ गई। जितना वे ज़ोर से घसीटते थे उतने ज़ोर से ही बारिश आ रही थी। इस तरह घसीटने से तपे की मृत्यु हो गई।

तत्पश्चात् सारी संगत, गाँव वासी और बाबा अमर दास जी गुरु अंगद देव जी के पास गाँव खान रज़ादा पहुंचे। पर बाबा अमर दास जी को आता देख कर गुरु जी ने मुख फेर लिया। जब बाबा अमर दास ने प्रार्थना की कि मुझ से क्या भूल हो गई है तो गुरु जी ने कहा, "सिक्ख मत्त में चमत्कार का कोई स्थान नहीं है, चमत्कार दिखाना अहंकार को ही पुष्ट करता है। कौन मनुष्य है जो ईर्ष्या रहित है। ऐसे व्यक्ति को सजा देना हमारे अधिकार क्षेत्र में नहीं है। बाबा जी की ओर से प्रार्थना करने पर गुरु जी ने उनकी भूल माफ कर दी।



ज्योति ज्योत समा गए

बाबा अमर दास जी अपने सेवा कार्य में फिर जुट गए। वे प्रातः तीन बजे उठते और जपुजी का पाठ करते ब्यास नदी के तट पर पहुंच जाते, फिर गागर भर कर वापिस खडूर साहिब आ जाते।

एक रात्रि बारिश बहुत पड़ रही थी। बाबा अमर दास जी जब जल लेने हेतु चलने लगे तो गुरु अंगद देव जी ने अपने बेटों को इस सेवा कार्य हेतु कहा, पर बेटे टाल गए। बाबा जी जल लेने चले गए। जब वे जल भर कर वापिस आ रहे थे तो एक जुलाहे की ताना बुनने वाली किल्ली से ठोकर लगने से गिर पड़े, पर उन्होंने गागर सम्भाल कर रखी। जब जुलाहे ने पूछा कि कौन है तो जुलाही ने उत्तर दिया, "वही गृहहीन अमरु है, और कौन है ?" बाबा जी ने यह बात सुन कर कहा, "मैं गृहहीन नहीं मैं तो गुरु वाला हूँ।"

बाद में वे गागर सम्भाल कर खडूर साहिब पहुंच गए और गुरु जी को स्नान करवाया। जब प्रातः दरबार लगा तो गुरु जी ने बाबा अमर दास जी से पूछा कि आज जल लाते समय क्या बात हुई थी। तब बाबा जी ने कहा, "भगवान आप अन्तर्यामी हो, मैं क्या बता सकता हूँ।" गुरु जी ने मुस्करा कर कहा उस जुलाही ने आप को गृहहीन कहा है, पर वह पागल नहीं जानती कि:

तुमहो निथावन थान। करहो निमानहि मान। निताणियां का तान। निओटियां की ओट। निआसरियां का आसरा। निधरियां दी धिर। नधीरन का धीर। पीरां दे पीर। दिआल गही बहोड़। जगत बंदी छोड़। भंनन घड़न समरथ। सभ जीवका जिस हत्थ।

जब दरबार सम्पूर्ण हुआ तो जुलाहा विलाप करता हुआ आ गया कि उसकी जुलाही पागल हो गई है। जब जुलाही दरबार में हाज़िर हुई तो गुरु जी की नज़र पड़ते ही ठीक हो गई। गुरु अंगद देव जी को अब पूरी तसल्ली हो गई थी कि गुरगद्दी का भार उठाने वाला केवल बाबा अमर दास ही है। 29 मार्च, सन् 1552 को गुरु जी ने बाबा बुड्ढा जी को बुलाया और उन से पांच पैसे और एक नारियल मंगवाया। फिर बाबा अमर दास को तख्त पर बिठा कर उनके आगे पांच पैसे और नारियल रख कर शीश नवाया। बाबा बुड्ढा जी ने मस्तक पर तिलक लगाया। गुरु जी ने सारी संगत को आदेश दिया कि आज से तुम्हारे गुरु बाबा अमर दास जी है। सारी संगत ने उनके आगे शीश नवाया।

फिर आप जी के चेहरे के ऊपर अजीब-सी लाली छा गई। आप जी की मुस्कराहट सागर के समान शान्त थी। सब ओर दृष्टि डाल कर वे सिंहासन के ऊपर विराज गए और आँखें बन्द करके ऊपर चादर ले ली। उनकी ज्योत प्रभु की ज्योत से मिल गई थी। सब ओर आवाज़ें गूंज रही थीं, "गुरु अंगद जैसा न और कोई।"



गुरु अमरदास जी

आरम्भिक जीवन

(गुरु) अमरदास जी का जन्म ज़िला अमृतसर के गांव बासरके में 5 मई सन् 1479 को माता लक्खो जी के उदर से बाबा तेज भान जी के घर में हुआ। गुरु अमरदास जी अपने बहन-भाइयों में सबसे बड़े थे। अन्य तीन छोटे भाई बाबा ईशरदास जी, बाबा खेम राय जी तथा बाबा मानक चन्द जी थे। भाई गुरदास जी बाबा ईशर चन्द जी के पुत्र थे। भाई सावन मल जी, जिन्होंने हरिपुर रियासत से गोईंदवाल साहिब के लिए इमारती लकड़ी लाने का प्रबन्ध किया था, बाबा खेम राय जी के सुपुत्र थे। चौथे भाई, भाई मानक चन्द जी के सुपुत्र भाई जस्सू जी, जिनका विवाह गुरु अंगद देव जी की सुपुत्री बीबी अमरो के साथ हुआ था। इस प्रकार चारों भाइयों के ही गुरु-घर के साथ अति घनिष्ठ तथा श्रद्धापूर्ण सम्बन्ध थे।

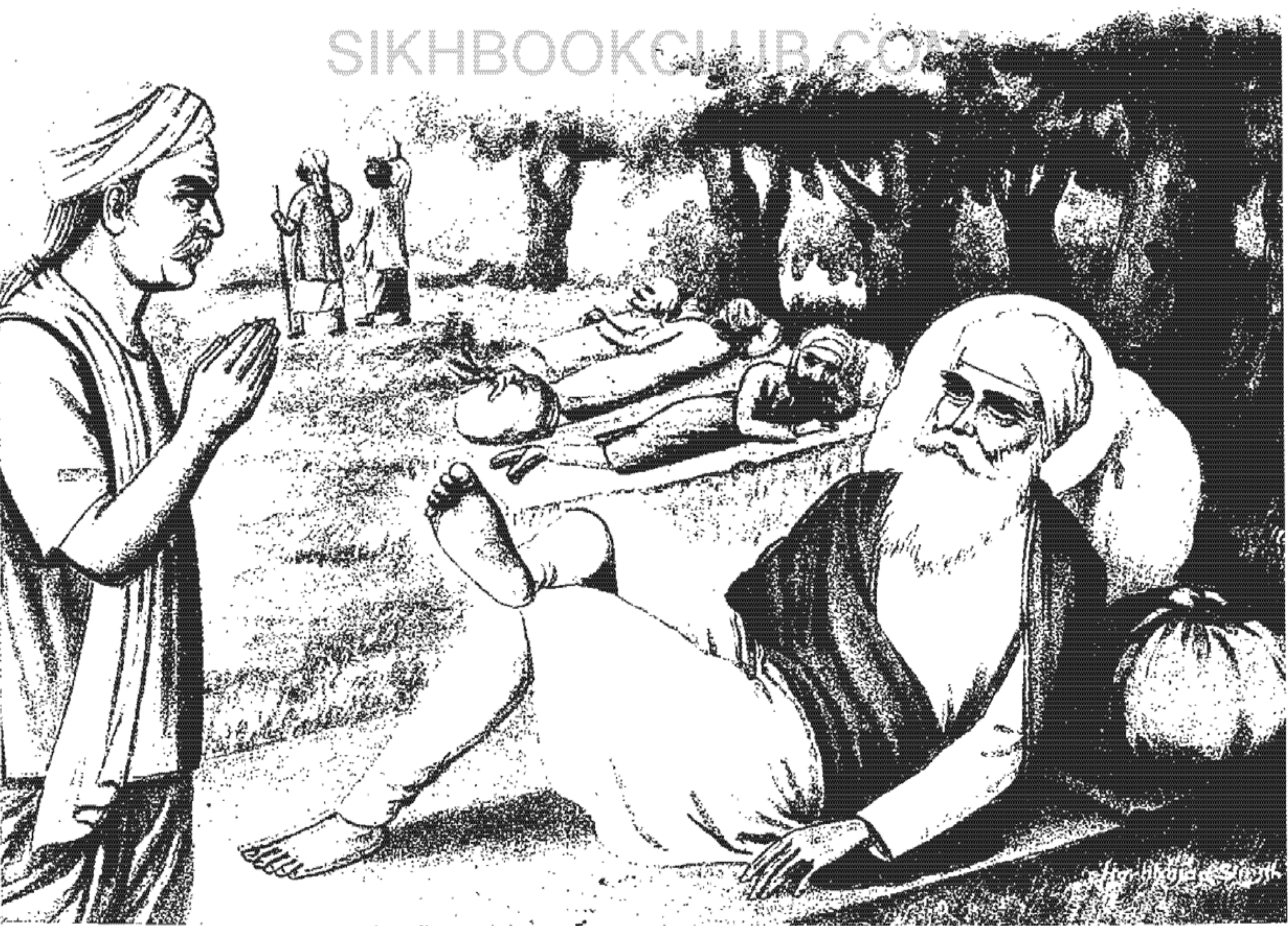
गुरु अमरदास जी के पिता बाबा तेज भान जी कृषि का कार्य तथा दुकान किया करते थे। सद्व्यवहार होने के कारण सारे इलाके में सभी उनका सम्मान करते थे। गुरु अमरदास जी ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण शीघ्र ही अपने पिता जी के साथ उनके कार्य में सहायता करने लग गये थे और दुकान का कार्यभार सम्भाल लिया था। उनका कद छोटा तथा शरीर बड़ा सुडोल था। बचपन से ही गुरु जी कसरत किया करते थे और खेतीबाड़ी में भी अपने पिता जी को पूरा सहयोग देते थे। जब भी कभी उन्हें समय मिलता तो वह निर्धनों की सेवा करके बहुत प्रसन्न होते थे। उन्होंने घर में ही विद्या ग्रहण की थी। साधु-संतों के साथ प्रेम होने के कारण उनका रुझान सिमरन की ओर हो गया। जब भी कभी साधुओं की कोई मंडली गांव में आती, वह उन्हें गांव में कई दिनों तक ठहरा कर उनकी सेवा किया करते थे। साधु-महात्माओं की संगत ग्रहण करके वह भजन-बन्दगी किया करते थे।

प्रभु भक्ति में वे ऐसे लिवलीन हुए कि दिनचर्या में व्यस्त होते हुये भी प्रभु का नाम सिमरन उनका नित्य-कर्म हो गया। जब वे जवान हुए तो पिता जी ने विवाह के लिए उन पर दवाब डाला, लेकिन (गुरु) अमरदास जी इस ओर कोई ध्यान ही नहीं देते थे। वे अपने काम और नाम-सिमरन में ही मस्त रहते थे। छोटे तीनों भाइयों के विवाह उन्होंने अपने हाथों से किए, लेकिन स्वयं प्रभु-भक्ति में लीन रहते थे।

अंत में बाबा तेज भान जी ने उनको सहमत कर ही लिया और उनका विवाह 28 वर्ष की आयु में सियालकोट के समीप सनखतरा गांव में कर दिया। उनकी पत्नी मनसा देवी, श्री देवी चन्द बहल की सुपुत्री थी। भले ही 28 वर्ष की आयु में उनका

विवाह हो गया, परन्तु 40 वर्ष की आयु तक उनकी कोई सन्तान नहीं थी। उनकी पहली सन्तान बीबी दानी जी थी। तत्पश्चात् बाबा मोहन जी, बाबा मोहरी जी तथा बीबी भानी जी ने उनके यहां जन्म लिया।

उन्होंने 50 वर्ष की आयु में तीर्थ स्थान तथा तप करने का विचार बनाया और वह वर्ष में दो बार हरिद्वार जाने लगे। एक बार जब वह इक्कीसवीं बार स्नान करके वापिस आ रहे थे, तब उनका दुर्गा नामक ब्राह्मण के साथ मेल हो गया। वे आराम करने के लिए जब टांग पर टांग रख कर लेटे हुए थे, तब दुर्गा ब्राह्मण की दृष्टि उनके पांव पर पड़ी। उनके पांव में पद्म देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया तथा गुरु अमरदास जी के आगे हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और कहने लगा कि आप के पांव में पद्म संकेत करता है कि "आप या तो बड़े शहंशाह बनेंगे या सच्चे पातशाह।" गुरु जी पंडित की यह बात सुनकर मुस्कराने लगे, लेकिन उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।



सच्चे पातशाह बने

जब दुर्गा ब्राह्मण ने गुरु अमरदास जी को कहा कि आप किसी दिन सच्चे पातशाह बनेंगे तब इन शब्दों को उनके अन्य साथियों ने भी सुन लिया। इन साथियों में से बाबा श्रीचन्द जी का उपासक एक ब्रह्मचारी आप का साथी बन गया। वह गुरु जी के स्वभाव से इतना प्रभावित हुआ कि वह उनके साथ ही चल पड़ा। वह किसी के हाथ का बना हुआ भोजन नहीं खाता था, फिर वह (गुरु) अमरदास जी के हाथों का बना हुआ भोजन करने लगा। गुरु जी उस साधु को अपने साथ गांव बासरके ले आए और उन्हें घर में अपने निजी चौबारे में ठहरा कर उन की बड़ी सेवा की। ब्रह्मचारी भी (गुरु) अमरदास जी के परिवार की सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने पूछा "धर्मात्मा जी! आप किस गुरु के शिष्य हो?" (गुरु) अमरदास जी ने कहा कि वे अभी तक तो गुरु की खोज ही कर रहे हैं। सच्चे गुरु की उनको प्राप्ति नहीं हुई है।

साधु ब्रह्मचारी गुरु अमरदास जी के यह वचन सुन कर बड़ा हैरान तथा दुःखी हुआ और ऊंचे स्वर में कहने लगा, "मुझे धिक्कार है, मैंने एक गुरुहीन का संग करके अपना जन्म ही व्यर्थ कर लिया है।" वह इस प्रकार बोलता हुआ चौबारे की सीढ़ियां उतर गया तथा घर को छोड़ गया।

साधु ब्रह्मचारी के यह शब्द सुन कर गुरु अमरदास जी गहरी चिन्ता में डूब गये। उन्हें लगा कि उन की सभी यात्राएं व्यर्थ थीं। गुरु के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती यह सोचते हुए वे हर समय गुरु प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने लगे।

इन्हीं दिनों एक दिन उन्होंने प्रातःकाल अपने भाई मानक चन्द के घर से आने वाली मीठी-मीठी बाणी की ध्वनि सुनी। इस बाणी का उन पर बहुत गहरा प्रभाव हुआ। एक दिन वे अपनी भाभी को पूछने लगे कि बीबी अमरो, जो बाणी पढती हैं वह किस की उच्चारण की हुई है। उनकी भाभी ने बताया कि यह बाणी गुरु नानक देव जी की उच्चारण की हुई है तथा बीबी अमरो ने यह बाणी अपने पिता जी से कंठ की है जोकि इस समय गुरु नानक देव जी की गद्दी पर सुशोभित हैं। यह सुनकर गुरु अमरदास जी को ऐसा अनुभव हुआ जैसे उन्हें एक सच्चा गुरु प्राप्त हो गया हो। वे अगले ही दिन बीबी अमरो को साथ लेकर खडूर साहिब पहुंच गये और गुरु अंगद देव जी के चरणों पर उन्होंने शीश झुकाया।

वहां पर कुछ दिन ठहर कर बाणी और कीर्तन सुन कर वे इतने प्रभावित हुए कि

उन्होंने खडूर साहिब में ही रहने का दृढ़ निश्चय कर लिया। कुछ दिन लंगर की सेवा करने के पश्चात् वे गुरु अंगद देव जी के निजी सेवक बन गए। वे हर समय उनकी सेवा के लिये तैयार रहते थे। उन्होंने नित्य का नियम बना लिया कि प्रातः 3 बजे वे उठ कर ब्यास नदी पर जाते और गागर में पानी लाकर गुरु अंगद देव जी को स्नान करवाते। फिर वे लंगर की सेवा में व्यस्त हो जाते थे। कुछ समय पढ़ाई करते तथा फिर सेवा में लग जाते थे। गुरबाणी वे सोते-जागते हर समय पढ़ते रहते थे।

अन्त में उनकी सेवा स्वीकार हुई और गुरु अंगद देव जी ने यह प्रण कर लिया कि गुरु-गद्दी का दायित्व गुरु अमरदास जी को ही सौंपा जाए। उन्होंने बाबा बुड्ढा जी को बुलाया और गागर पानी की भर कर लाने के लिये कहा। गुरु अंगद देव जी ने अपने हाथों से (गुरु) अमरदास जी को स्नान करवा कर गुरु-गद्दी पर विराजमान कर दिया तथा उनके इर्द-गिर्द परिक्रमा करके माथा टेका और बाबा बुड्ढा जी ने तिलक लगाने की रस्म अदा की। फिर सारी संगत को आदेश दिया कि आज से तुम्हारे गुरु श्री अमरदास जी होंगे। फिर समस्त संगत ने बाबा अमरदास जी के आगे शीश झुकाया। ब्राह्मण दुर्गा की कही हुई बात सत्य हुई। गुरु अमरदास जी इस दीन दुनिया के पातशाह बन गए।



गोईंदवाल का निर्माण

गोईंदे नाम का एक व्यापारी था। उसकी जमीन ब्यास नदी के समीप थी। व्यापारी होने के कारण उसे काफी समय तक दूर देशों-प्रदेशों में रहना पड़ता था। एक बार जब वह प्रदेश में गया हुआ था तब उस के शरीके वालों ने उसकी जमीन पर कब्जा कर लिया। उसने अनेक प्रयत्न किये परन्तु शरीके वालों ने उस की जमीन से कब्जा न छोड़ा। अन्त में उस ने दिल्ली में मुकद्दमा कर दिया तथा मनोकामना की कि यदि वह केस जीत जाये तो वह आधी जमीन खडूर साहिब वाले गुरु जी के नाम कर देगा।

कृपा वाहिगुरु जी की इस प्रकार हुई कि वह मुकद्दमा जीत गया तथा उसने अपनी आधी जमीन का पट्टा गुरु जी के नाम कर दिया। अपनी जमीन पर उसने एक नगर का निर्माण करना चाहा, लेकिन हारे हुए शरीक उस के बनाए हुए मकान रातों-रात नष्ट कर देते थे तथा उन्होंने यह चर्चा कर दी कि इस गांव में भूत रहते हैं जो रातों-रात इन मकानों को नष्ट कर देते हैं। गोईंदा इस घटना से बहुत दुःखी हुआ तथा वह गुरु अंगद देव जी के दरबार में उपस्थित हुआ। उस ने नये नगर के निर्माण में आने वाली कठिनाइयों के बारे में गुरु जी से विनती की। गुरु जी ने गोईंदे की विनती प्रवान कर ली और नए नगर के निर्माण में योगदान देने का विश्वास दिलाया। तब उन्होंने बाबा दासू जी को बुलाया तथा उन्हें आदेश दिया कि वह गोईंदे के साथ जाकर नगर का निर्माण कराएं। लेकिन बाबा दासू जी ने यह बात कह कर इन्कार कर दिया कि ऐसी जगह क्यों भेज रहे हो जहां भूत-प्रेतों का वास है। हमें तो खडूर साहिब ही अच्छा है। जब बाबा दातू जी को बुला कर भाई गोईंदे के साथ जाने के लिये कहा गया तो वह भी टाल-मटोल कर गए।

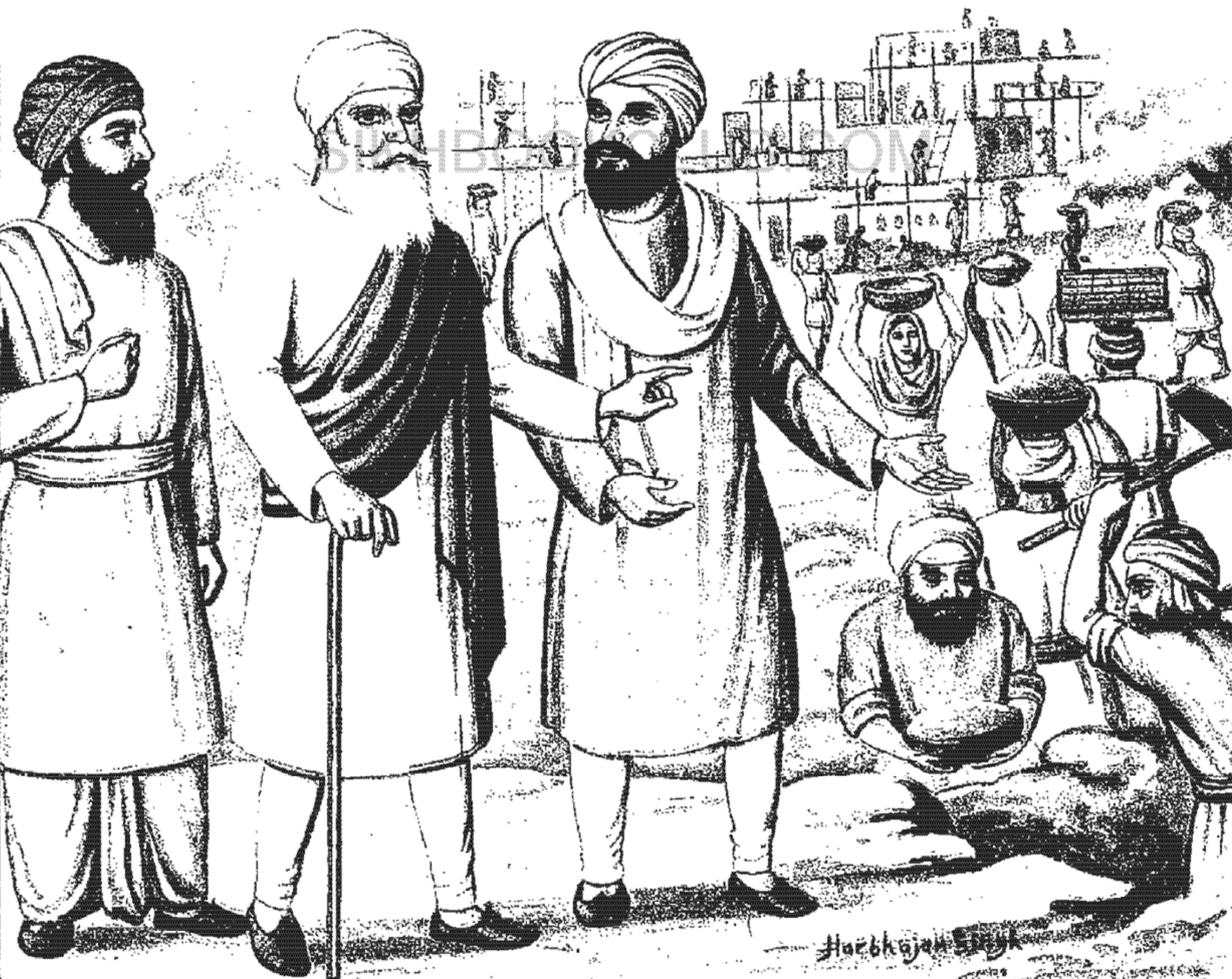
जब गुरु जी ने देखा कि उनका कोई भी पुत्र जाने के लिये तैयार नहीं है तब उन्होंने यह आदेश बाबा अमरदास जी को कह सुनाया। उस समय बाबा जी को अभी गुरु गद्दी नहीं सौंपी गई थी। बाबा अमरदास जी उसी समय जाने के लिये तैयार हो गये।

भूत-प्रेतों का भय दूर करने के लिये गुरु जी ने उनको एक छड़ी दी और आगाह किया कि खुदाई और चिनाई पूर्व दिशा की ओर से आरम्भ की जाए।

गुरु जी का उद्देश्य और छड़ी लेकर बाबा अमरदास जी भाई गोईंदे की जमीन पर आ पहुंचे और उन्होंने गांव का निर्माण पूर्व की ओर से आरम्भ कर दिया। इलाके

की सिक्ख-संगत भी उन की सहायता के लिये आ पहुंची। भाई गोईंदे ने मजदूरों व सामान का प्रबन्ध कर दिया। मुख्य सड़क पर होने के कारण कई सराएं तथा हवेलियों का निर्माण कर दिया गया। गुरु जी के लिये सत्संग-भवन तथा रिहायशी-भवनों का निर्माण किया गया। बाहर के लोगों के लिये बाज़ार और दुकानें बना दी गईं। इस प्रकार कुछ समय में ही गोईंदे की जमीन पर सुन्दर शहर आबाद हो गया।

तत्पश्चात् जब बाबा अमरदास जी को गुरु अंगद देव जी ने आदेश दिया कि वह अपने सारे परिवार को गोईंदवाल लेकर आएं तब बाबा अमरदास जी अपने सारे परिवार के साथ यहां आकर बस गए परन्तु बाबा अमरदास जी ने अपनी सेवा में कोई बाधा नहीं आने दी, वे गुरु जी को ब्यास नदी के जल से ही स्नान करवाते रहे।



राजा हरी चन्द जी का दर्शनों के लिये आगमन

गुरु गद्दी प्राप्त होने के पश्चात् शान्त-स्वभाव गुरु अमरदास जी ने गुरु अंगद देव जी के आदेशानुसार गोईंदवाल साहिब में आकर मंगलमयी वातावरण बनाया। पहले कुछ दिन उन्होंने मंजी नहीं लगाई, अपने चौबारे में ही बैठ कर एकान्त में प्रभु-सिमरन करते रहे और फिर मंजी लगा कर कीर्तन-प्रवाह तथा सत्संग आरम्भ हो गया। दूर-दूर से संगतें बड़े उत्साह के साथ आने लगीं तथा उपहार भेंट करके गुरु जी की खुशियां प्राप्त कीं। गुरु जी ने भी अटूट लंगर की दात प्रदान की तथा किसी प्रकार की कमी नहीं थी। लोग दूर-दूर से आकर वहां निवास करने लगे परन्तु इतने भवन अभी बनाए नहीं गये थे कि सारी संगत निवास कर सकती। शेष सभी वस्तुएं उपलब्ध थीं लेकिन इमारती लकड़ी की कमी थी।

एक दिन गुरु जी ने अपने भतीजे सावन मल को बुलाया तथा उसे एक रूमाला प्रदान करके हरीपुर के पहाड़ी राजे के पास भेजा कि वह शीघ्र ही इमारती लकड़ी का प्रबन्ध करे।

जब भाई सावन मल हरीपुर पहुंचा तब उसने देखा कि शहर के लोगों ने एकादशी का व्रत रखा हुआ है तथा कहीं भी खाने के लिये कुछ उपलब्ध नहीं था। भाई सावन मल ने आप लकड़ियां इकट्ठीं करके रोटी पकाई। स्वयं भोजन किया तथा जो बच गया वह गरीब लोगों में बांट दिया। राजे के पास किसी ने यह बात कर दी कि एक सिक्ख ने आग जलाई है तथा रोटी पकाई है। राजे ने उसी समय आदेश दिया कि उस व्यक्ति को पकड़ कर पेश किया जाए।

जिस समय भाई सावन मल को कैद किया गया उसी समय राजे का लड़का बीमार हो गया। शाही वैद्य बुलाया गया लेकिन लड़के की तकलीफ बढ़ती गई। फिर राजे को किसी ने बताया कि जिस समय से उस सिक्ख को कैद किया गया है तब से लड़के की पीड़ा बढ़ती गई है। उस सिक्ख को यहां बुलाया जाना चाहिए। राजे ने उसी समय भाई सावन मल को आज़ाद करके अपने महलों में बुला लिया। जब सावन मल वहां पहुंचा तब राजा ने उसे अपने लड़के के दुःख के बारे में बताया। भाई सावन मल ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है।" फिर वह लड़के के पास गया तथा उसने गुरु अमरदास जी की ओर से प्रदान किया हुआ रूमाल बच्चे के मुंह पर फेरा। बच्चा उसी समय निरोग हो गया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ तथा भाई सावन मल को उस रियासत में आने का प्रयोजन पूछा। भाई सावन मल ने उसको सब-कुछ

बता दिया कि गोईंदवाल के निर्माण कार्य के लिये इमारती लकड़ी की आवश्यकता है। राजा हरी चन्द उसी समय सहमत हो गये और अपने आदमियों की देख-रेख में उन्होंने लकड़ियां और शहतीरियां ब्यास नदी में डाल दीं ताकि गोईंदवाल जाकर प्राप्त की जा सकें।

फिर राजा हरी चन्द ने इच्छा प्रकट की कि वे गुरु अमरदास जी के दर्शन करना चाहते हैं। भाई सावन मल जी ने कहा कि वे जब चाहें गुरु जी को मिल सकते हैं।

यह बात सुन कर राजा सपरिवार गोईंदवाल की ओर चल पड़ा। जब राजा अपनी रानियों के साथ गोईंदवाल पहुंचा, तब सिक्खों ने उन्हें समझाया कि रानियां सादे कपड़ों में और घुंघट निकाले बिना ही गुरु जी के दर्शन करने के लिये जाएं। जब राजा रानियों के साथ गुरु जी के दर्शन करने गया तब एक रानी ने घुंघट निकाला हुआ था। गुरु जी ने जब घुंघट में रानी को आते देखा तो उन्होंने सहज-स्वभाव वचन किये, "यह कौन-सी कमली है जो गुरु घर की मर्यादा नहीं जानती। यदि इस ने दर्शन ही नहीं करने थे तो फिर यहां किस लिए आई है?"

महाराज का वचन सुनते ही वह रानी कमली हो गई तथा जंगल की ओर दौड़ गई। बहुत खोज करने पर भी रानी मिल न सकी।



भाई सच-निसच

हरीपुर का राजा अब निरन्तर इमारती लकड़ी भेज रहा था। नए भवनों का निर्माण जारी था। गोईंदवाल व्यापार का एक बड़ा केन्द्र बनता जा रहा था। गोईंदवाल इतना प्रसिद्ध हो गया कि बताया जाता है एक बार दिल्ली में तेल की कमी आ गई। जब गोईंदवाल के व्यापारियों को तेल सप्लाई के लिये लिखा गया तब उन्होंने दिल्ली के बादशाह को यह लिखा कि यदि गोईंदवाल तक नहर बनवा दी जाए तब वे नहर को तेल से भर देंगे ताकि फिर दोबारा तेल की कमी न आ पाए।

इन्हीं दिनों यहां यह खबर सुनने में आई कि वह रानी जो घुंघट निकालने के कारण पागल हो गई थी, वह मिल गई है। बात वास्तव में यह हुई कि सच-निसच गुरु घर का बहुत ही प्रेमी सिक्ख था। उसके बारे में कहा जाता है कि वह गांव मदरका ज़िला लाहौर का रहने वाला था। वह एक योग्य तथा प्रसिद्ध वैद्य था, पर उसे हजीरां के रोग ने इस प्रकार ग्रस्त किया कि उसका उपचार न तो वह स्वयं कर सका और न ही किसी अन्य हकीम से हो सका। एक दिन वह संगत के साथ गुरु जी के दर्शनों के लिये आया। जब उसने गुरु की चरण पादुका को अपने शरीर के साथ छुआया तो उसका रोग पूर्णतया दूर हो गया। गुरु जी के चरणों की शक्ति को देखकर वह धन्य हो गया और सदा के लिये गोईंदवाल का होकर रह गया। वह हर समय गुरु घर की सेवा में लीन रहता और लंगर की सेवा करता, जंगल में जाकर लकड़ियां लाया करता तथा हर समय सच-निसच बोलने के कारण ही उसका नाम सच-निसच पड़ गया।

एक दिन जब वह जंगल में लकड़ियां काटने जा रहा था तो पीछे से किसी ने उसे ऐसे पकड़ कर झिंझोड़ा कि वह उससे खुद को छुड़ा नहीं सका। उसका कुल्हाड़ा नीचे गिर पड़ा और रस्सा पांव में लिपट गया। जब उसने जोर से उससे छुड़ाया तब उसने देखा कि उसके सामने एक पागल स्त्री हंस रही थी। फिर वह स्त्री जंगल में आलोप हो गई। सच-निसच से उस दिन लकड़ियां नहीं काटी गईं। उस ने वापस आकर सारी घटना गुरु जी को बताई। गुरु जी ने कहा, "यह वही रानी है जो घुंघट निकाल कर यहां आई थी।"

सच-निसच सारी रात इस घटना के बारे सोचता रहा कि उस रानी को ठीक कैसे किया जाए। अन्त में उसे अपने रोग की घटना याद आ गई कि वह गुरु जी की जूती छूने से ही ठीक हो गया था। वह रानी भी यदि गुरु जी के जोड़े को छू ले तो

वह ठीक हो सकती है। लेकिन पागल रानी तो वहां आ नहीं सकती थी, इसलिये उसने गुरु जी से पांव की एक खड़ांव मांग ली। उस खड़ांव को लेकर वह जंगल में घूमता रहा। एक स्थान पर उसे वह पागल रानी अचानक मिल गई। उस ने उसी समय वह खड़ांव उस रानी को छुआ दी। खड़ांव छूते ही रानी बिल्कुल ठीक हो गई। जब वह होश में आई तो सच-निसच के कहने पर वह उसके साथ गोईंदवाल आ गई। गुरु जी ने उसे सुन्दर वस्त्र प्रदान किये। फिर उसका विवाह सच-निसच के साथ कर दिया। गुरु जी ने अपनी दूसरी खड़ांव भी उनको दे दी ताकि वे गृहस्थी का सही अर्थ समझ सकें। फिर गुरु जी ने बाइस मंजियों में से एक मंजी सच-निसच को प्रदान की।



पाखंडी तपस्वी के षड़यंत्र का पर्दाफाश

उन दिनों में गोईंदवाल में हरी राम नामक एक तपस्वी रहता था। वह मरवाहा खत्री कुल में से था। वह अपने आप को उच्च जाति का समझता था, इसलिये गुरु जी द्वारा सांझे लंगर की प्रथा का विरोध करता था। वह प्रत्येक समय लोगों में प्रचार करता कि गुरु अमरदास जी धर्म का नाश कर रहे हैं। प्रत्येक नीच जाति का व्यक्ति उस लंगर में एक-दूसरे के साथ जुड़ कर रोटी खा सकता है। इस प्रकार खत्री-ब्राह्मणों का धर्म भ्रष्ट हो रहा है। उस के भड़काने से कई खत्री भी गुरु जी के विरुद्ध हो गये।

गुरु जी उस तपस्वी की हैसियत को जानते थे। उन्होंने यह घोषणा कर दी कि जो उच्च कुल का खत्री-ब्राह्मण सांझे लंगर में प्रसाद खाएगा उस को एक रुपया दक्षिणा के रूप में दिया जाएगा। यह हुक्मनामा सुनकर बहुत से लोग लंगर खाने के लिये आये, लेकिन तपस्वी नहीं आया।

गुरु जी ने फिर दोबारा घोषणा की कि जो खत्री या ब्राह्मण सांझे लंगर में भोजन करेगा उस को दक्षिणा के रूप में पांच रुपये दिए जाएंगे। इस बार भी कई उच्च कोटि के ब्राह्मण तथा खत्री लंगर में सम्मिलित हुए, परन्तु तपस्वी फिर भी नहीं आया। गुरु जी समझ गये कि तपस्वी छोटी धन राशि के लिये नहीं आयेगा, इस लिये दक्षिणा की राशि बढ़ा कर एक मोहर कर दी गई। जब तपस्वी को यह पता चला कि भोजन के साथ दन्त-घिसाई एक मोहर मिल रही है तब उस से रहा नहीं गया। वह स्वयं जाने से डरता था, पर उस ने लंगर की दीवार फांद कर अपने लडके को लंगर की ओर भेजा। दीवार से गिरने के कारण लड़के की टांग टूट गई। संगत उसको उठा कर पंगत में ले गई। उसकी टांग टूट गई थी, पर वह चीखा नहीं। वह चुप-चाप भोजन करता रहा। लंगर खाकर एक मोहर लेकर लंगड़ाता हुआ अपने घर को चला गया। जब नगरवासियों तथा विशेष कर मरवाहा खत्रियों को इस बारे पता चला तब उन्होंने तपस्वी की बहुत निन्दा की। वे कहने लगे, "थोड़ी राशि देखकर जाता नहीं था, पर जब उसने बड़ी राशि देखी तब वह रह न सका।" अब उसकी उच्च जाति कहां गई थी। एक मोहर प्राप्त करने के लिये उसने अपने लडके की टांग भी तुड़वा ली। सारा नगर तपस्वी के विरुद्ध हो गया। सब ने उसे फटकार लगाई। सब ने उससे अपना रिश्ता ही तोड़ लिया, पर गुरु जी उसका अभिमान तोड़ना चाहते थे। उन्होंने तपस्वी को अपने पास बुलाया और कहा, "भाई जी! तपस्वी कहला लेना बहुत आसान है, पर तपस्वी की मर्यादा रखना बहुत कठिन है।

वास्तव में तपस्वी वही है जो पर-निंदा नहीं करता। सच्चा तपस्वी माया के जाल में नहीं फंसता। तपस्वी वह है जो किसी शारीरक कष्ट के बिना सच्चे हृदय से वाहिगुरु जी का तप करता है। वाहिगुरु जी भी उसी व्यक्ति पर कृपा करते हैं जो सांसारिक लालच को छोड़ कर सच्चे दिल से उनकी भक्ति करता है तथा उनकी रज़ा में रह कर प्रसन्न होता है। प्रभु ने किसी को ऊंची या नीच कुल का नहीं बनाया। मनुष्य अपने कर्मों से ही बड़ा अथवा छोटा होता है। ब्राह्मण या खत्री कुल में पैदा होने से कोई बड़ा नहीं बन जाता। यदि ब्राह्मण नीचता का काम करता है तो वह भी नीच ही बन जाता है। यदि भक्त रविदास जी तथा कबीर जी की भान्ति नीच जाति का प्रभु भक्ति करता है तो वह सब जातियों से बड़ा हो जाता है।" गुरु जी की यह बातें सुन कर तपस्वी धन्य हो गया।



भाई पारो जुल्का

गुरु अमरदास जी के कई श्रद्धावान सिक्ख हुये हैं। ये सिक्ख वर्षा हो या अन्धेरी अथवा अन्य किसी प्रकार की रुकावट पेश आये, लेकिन गुरु जी के दर्शन करने के लिये प्रतिदिन आते थे। ऐसे सिक्खों में से भाई पारो बहुत ही धैर्यवान सिक्ख हुआ है। वह गांव डल्ला ज़िला कपूरथला का रहने वाला था। वह गांव डल्ले से गोईंदवाल के लिये प्रतिदिन ब्यास नदी पार करके गुरु जी के दर्शन करने आता था।

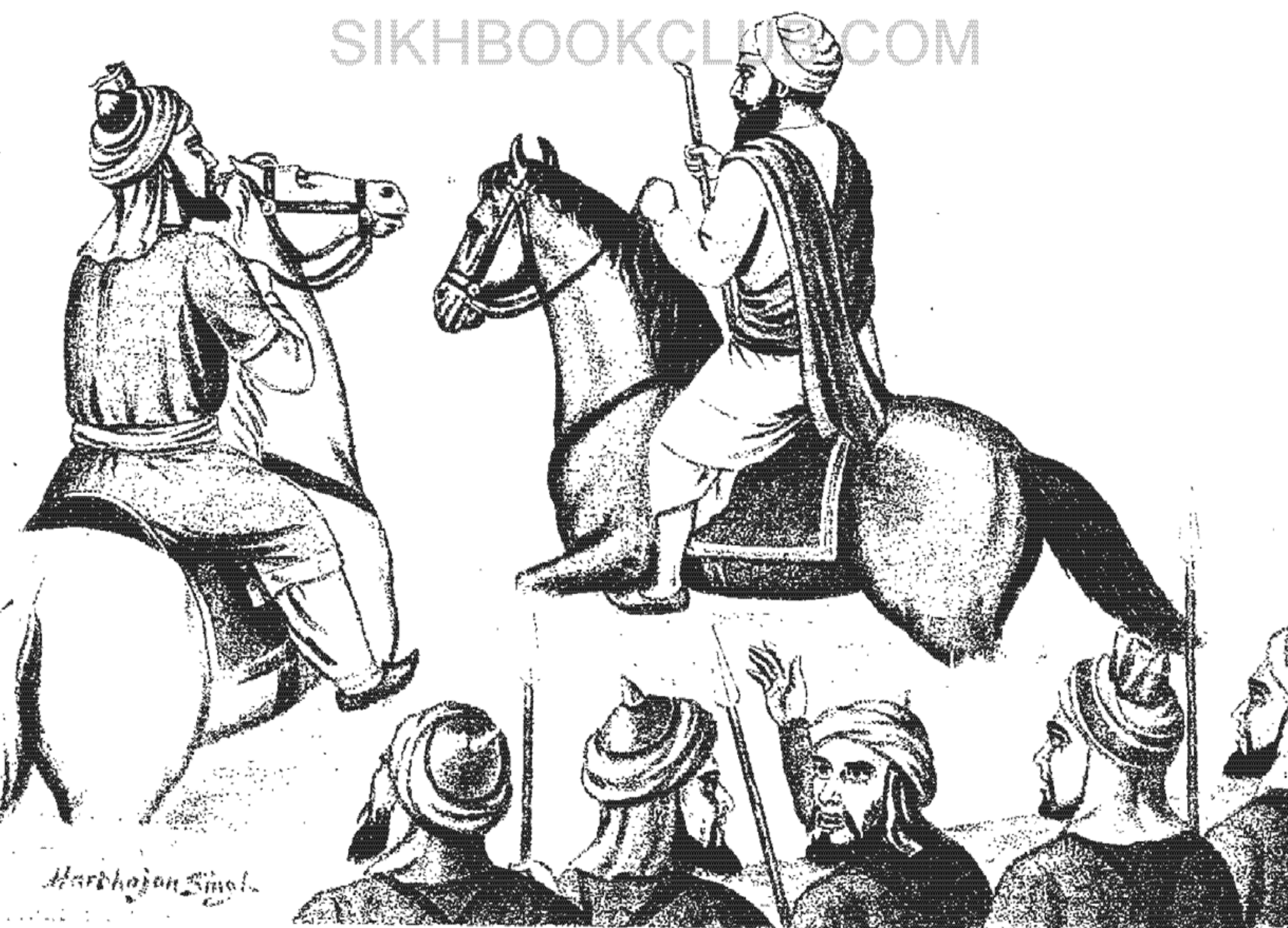
एक दिन जब वह ब्यास नदी के तट पर पहुंचा तो नदी में बाढ़ आ चुकी थी। पानी भयानक रूप में बह रहा था। उस समय नदी के किनारे जालन्धर का हाकिम अब्दुल्ला अपनी फौज लेकर बैठा था और इसी प्रतीक्षा में था कि कब नदी का पानी कम हो और वह ब्यास नदी को पार करके आगे बढ़े, लेकिन उस ने देखा कि भाई पारो जुल्का घोड़े पर सवार होकर आया और बाढ़ की परवाह न करता हुआ, गुरु जी का नाम लेकर नदी में कूद पड़ा और घोड़ा पानी को चीरता हुआ पार हो गया। हाकिम अब्दुल्ला यह अद्‌भुत दृश्य देखता ही रह गया। सारा दिन व्यतीत हो गया परन्तु नदी का पानी नीचे न उतरा और अब्दुल्ला को फौज उस पार ले जाने का हौसला न हुआ। जब शाम हुई तो भाई पारो नदी पार करके वहा पहुंच गया जहां पर अब्दुल्ला अपनी सेना के साथ बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। जब हाकिम अब्दुल्ला ने भाई पारो को वापस आते देखा तो उसने उसे अपने पास बुलाया और पूछा, "तुम्हारा मुरशद (गुरु) कौन है जिस का नाम लेकर तुम नदी की बाढ़ को दृष्टि-विहीन करके नदी को पार कर गए और फिर ठीक-ठाक वापस आ गए। तेरे मन में कोई भय नहीं आया।" भाई पारो ने उत्तर दिया, "मेरे मुरशद मेरे पातशाह गुरु अमरदास जी हैं। वे गुरु नानक देव जी की गद्दी पर विराजमान हैं। वर्षा हो या आंधी मैं प्रतिदिन उनके दर्शनों के लिये जाता हूं। उनका ध्यान करने से सभी भय दूर हो जाते हैं। उन की बाणी का पाठ करते हुए मुझे पता ही नहीं चलता कि किस समय मैं नदी पार कर जाता हूं।"

हाकिम अब्दुल्ला की हाकमी जाती रही तथा वह बड़ी नम्रता से बोला, "क्या मैं आपके गुरु जी के दर्शन कर सकता हूं।" भाई पारो ने कहा कि वे आप को इस हालत में नहीं मिल सकते। पहले आप को सेना का त्याग करना पड़ेगा। फिर वे अकेले ही गुरु जी के दर्शन कर सकते हैं। अब्दुल्ला ने उसी समय सेना की कमान अपने पुत्र को सौंप दी और स्वयं घोड़े पर सवार होकर भाई पारो की भान्ति बिना

भय के नदी में कूद गया।

भाई पारो के साथ आकर उसने गुरु जी के दर्शन किए और दर्शन करके इतना प्रसन्न हुआ कि वह गुरु जी का ही होकर रह गया। वह गोईंदवाल में गुरु जी की सेवा में रत हो गया। हर समय अल्ला-अल्ला ही करता था। उसका अल्ला के साथ इतना प्यार देखकर लोगों ने उस का नाम ही अल्लायार रख दिया। इस के पश्चात् गुरु जी ने अल्लायार को एक मंजी भी प्रदान की।

भाई पारो की करनी देखकर गुरु जी ने उसको परम-हंस की उपाधि प्रदान की। एक बार गुरु जी ने भाई पारो की भक्ति से प्रसन्न होकर उसे गुरु गद्दी देने का भी संकल्प किया, परन्तु भाई पारो ने उसी समय यह कह कर इंकार कर दिया कि वह एक गुरसिख ही बना रहना उचित समझता है।



जैसी करनी वैसी भरनी

अल्प समय में ही श्री गोईंदवाल साहिब एक विशाल शहर बन गया था। यहां पर प्रत्येक जाति के लोग आकर बस गए, लेकिन खोजे वंश के लोग कुछ अधिक ही आकर बस गये थे। ये लोग सखी सरवर को मानते थे और उस समय इस इलाके के आम गांव में सखी-सरवरों की अधिक संख्या थी। नया शहर बसने के कारण तथा व्यापार की नई सम्भावनाओं को मुख्य रखकर ये लोग गोईंदवाल में आ बसे थे। जब उन्होंने देखा कि कुछ मुसलमान भी सिक्खी से प्रेरित हो रहे हैं तो उन्होंने गुरु जी के सिक्खों को तंग करना आरम्भ कर दिया। वे इस तथ्य से भली-भान्ति परिचित थे कि गोईंदवाल को गुरु अमरदास जी ने ही आबाद किया है, पर फिर भी वे अपना दब-दबा रखना चाहते थे।

जब सिक्खों की स्त्रियां कुएं पर पानी भरने जाती थीं तब वे गुलेलें मार कर उनके घड़े तोड़ देते थे। सिक्खों ने जब गुरु साहिब के पास शिकायत की, तब गुरु जी ने मशकें लाने के लिये कहा। तब सिक्ख मशकों में पानी भरने लगे। तब वे तीर मार कर मशकों में सुराख कर देते थे। इस प्रकार ये खोजे और भी अतातायी हो गये। जब सिक्खों ने इन के साथ टक्कर लेने की गुरु जी से आज्ञा मांगी, तब गुरु जी ने उन्हें रोक दिया तथा कहा कि वे हमारे नगर-वासी हैं, हमें किसी के साथ लड़ाई करने की आवश्यकता नहीं है। गुरु जी ने यह आदेश दिया कि पीतल की गागरें मंगवाई जाएं। जब सिक्ख पीतल की गागरों में पानी लाने लगे तब वे पत्थर मारकर गागरों को खराब कर देते थे। सिक्ख तंग आकर जब गुरु जी के पास शिकायत करते तब गुरु जी उन्हें शान्त रहने के लिये कहते। कई बार तो वे यह भी कह देते, "जैसा कोई करेगा, वैसा ही भरेगा।"

वाहिगुरु की करनी इस प्रकार हुई कि संन्यासियों की एक टोली गोईंदवाल में आ गई। खोजों ने उनके साथ भी छेड़खानी की। संन्यासियों की संख्या अधिक थी। उन्होंने अपने डंडे निकाल लिये तथा उन खोजों को इतना पीटा कि उनकी हड्डी-पसलियां टूट गई तथा कुछ अपनी जान भी गंवा बैठे। नगर में बिल्कुल शान्ति हो गई, लेकिन कुछ समय के बाद खोजे फिर शरारतें करने लगे। उन दिनों में लाहौर से शाही खजाना खच्चरों पर दिल्ली जा रहा था। रात को खजाने के रक्षकों ने गोईंदवाल में ठहरना ही उचित समझा, इसलिये वे यहां एक सराये में ठहर गये। सायंकाल बड़े जोर की आंधी और तूफान आ गया जिस कारण खजाने की एक

खच्चर भरी हुई गुम हो गई। जब प्रातःकाल उठ कर उन्होंने खच्चरों की गिनती की तो एक खच्चर कम थी। खजाने के इन्चार्ज को चिन्ता हो गई। उसने अपने सिपाही नगर के चारों ओर भेजे; पर कोई पता नहीं लगा। अन्त में कुछ समय पश्चात् गुम हुई खच्चर अपने आप हिनकने लगी। खच्चर की हिनक सुनकर सिपाही उस ओर दौड़े। अन्त में एक खोजे के घर से वह खच्चर मिल गई। खजाने के इन्चार्ज ने सारे खोजों को बुला लिया। उन्होंने कुछ खोजों को वहीं पर मार दिया, शेष को वे बंदी बनाकर अपने साथ दिल्ली ले गये।

जो खोजे गोईंदवाल में बचे वे नगर छोड़कर चले गये। इस प्रकार शहर में खोजों का सफाया हो गया और गुरु जी द्वारा कहा हुआ कथन कि 'जैसी करनी, वैसी भरनी' सिद्ध हो गया।



सेंध लगाकर गुरु जी के दर्शन करने

गुरु अमरदास जी की उपमा इतनी फैल गई कि हजारों की संख्या में संगत प्रतिदिन दर्शनों के लिये आती थी, लेकिन यह सब कुछ गुरु अंगद देव जी के छोटे पुत्र दातू जी सहन नहीं कर सके।

ब्राह्मणों के कहने पर बाबा दातू जी एक दिन ब्राह्मणों को साथ लेकर घोड़े पर सवार होकर गोईंदवाल आये। उस समय गुरु जी का दीवान लगा हुआ था तथा हजारों की संख्या में संगतें हाजरी भर रही थीं। बाबा दातू जी ने गुरु साहिब जी के समक्ष यह इकट्ठ देखा तो वह आग-बबूला हो गए। वह घोड़े से नीचे उतरे तथा सीधे गुरु जी के पास गए। उन्होंने गुस्से में गुरु जी को टांग से ठोकर मार दी। गुरु जी तख्त से नीचे गिर पड़े और बाबा दातू जी स्वयं तख्त पर बैठ गये। फिर गुरु जी ने उसकी ओर देख कर कहा, "आपने ऐसा कष्ट क्यों किया? कहीं आप के पांव को चोट तो नहीं लगी? मेरा शरीर तो सेवा करते-करते हड्ड़ियां ही हो गया है तथा सख्त हो गया है।"

परन्तु बाबा दातू जी को इस बारे कोई पश्चाताप नहीं हुआ। उसने कई प्रकार के अपशब्द बोले। गुरु जी उठकर अपने चौबारे में चले गये, परन्तु कुछ ही समय पश्चात् बाबा दातू जी ने देखा कि उनके सामने कोई सिक्ख मौजूद नहीं था। क्रोध में आकर उन्होंने सारा चढ़ावा सम्भाल लिया तथा कीमती सामान लूट लिया। यह सब कुछ सम्भाल कर वे खडूर साहिब चले गये। गुरु अमरदास जी अगले दिन तड़के उठे और घोड़ी पर बैठ कर बासरके चले गये। वहां जाकर वे गांव से बाहर एकान्त में बने एक मकान में रहने लगे। दरवाजे पर उन्होंने लिख दिया कि यदि कोई इस द्वार मार्ग से अन्दर आएगा, वह न तो मेरा सिक्ख होगा और न ही मैं उसका गुरु।

गोईंदवाल में जब प्रातः भाई बल्लू स्नान कराने की सेवा करने के लिये गये तो उन्होंने देखा कि गुरु जी चौबारे में नही थे। तबेले में जब उन्होंने देखा तो उनकी घोड़ी भी गायब थी। जब बाकी सिक्ख संगत को पता चला तो सब बेचैन हो गये। इस सब का उत्तरदायी वह बाबा दातू को समझने लगे, इसलिये सभी बाबा दातू को कोसने लगे। बाबा दातू जी जब गुरु घर का सारा माल लूट कर खडूर साहिब जा रहे थे तो रास्ते में उनको डाकुओं ने आ घेरा। उन्होंने उनका सारा माल लूट लिया और उनकी दाईं टांग पर ऐसी चोट मारी कि उनके पांव की हड्डी ही टूट गई और

वह चिल्लाते हुए घर पहुंचे। इधर गोईंदवाल में जब संगतों को गुरु जी के दर्शन न हुए तो वे गुरु जी की खोज में बाबा बुड्ढा जी के पास गईं। बाबा बुड्ढा जी गोईंदवाल में आ गये। संगतों को विश्वास हुआ क्योंकि वे जानते थे कि बाबा बुड्ढा जी को यह वर मिला हुआ था कि 'कभी भी तुम से दूर नहीं होऊं'।

बाबा बुड्ढा जी ने संगत से आकर पूछा कि घोड़ी कहां है? जिस पर सवार होकर गुरु जी गये थे। सिक्खों ने उस घोड़ी को लाकर उपस्थित किया। बाबा बुड्ढा जी ने उस घोड़ी को छोड़ने के लिये कहा। घोड़ी आगे-आगे चल पड़ी और पीछे-पीछे बाबा बुड्ढा जी के साथ मुख्य श्रद्धालु सिक्ख चल पड़े। घोड़ी गांव बासरके के बाहर बने एक मकान के सामने रुक गई। जब सिक्ख दरवाजे की ओर बढ़े और उस पर लिखे शब्द पढ़े, तब सारे उदास होकर पीछे हट गये, परन्तु बाबा बुड्ढा जी ने कहा, "उदास होने की कोई बात नहीं है, मकान के पीछे से सेंध लगाओ।" शीघ्र ही सारी संगत इस कार्य में जुट गयी। रास्ता बनने पर सिक्ख अन्दर चले गये। गुरु जी उस समय समाधि में लीन थे। समाधि खुलने के पश्चात् सब ने गुरु जी को माथा टेका। गुरु जी ने नाराज होकर कहा कि आप ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है लेकिन बाबा बुड्ढा जी ने कहा, "हम ने आपकी आज्ञा की अवहेलना नहीं की, सभी पीछे से आये हैं।" फिर बाबा बुड्ढा जी ने गुरु जी को गोईंदवाल वापस जाने की प्रार्थना की। गुरु जी को उनकी अपनी घोड़ी पर बिठा कर गोईंदवाल लाया गया।



बावली का निर्माण

जब बाबा बुड्ढा जी गुरु जी को घोड़ी पर बिठा कर गोईंदवाल साहिब ले आये तब संगतें बड़े उत्साह के साथ गुरु जी के दर्शनों के लिये आईं। गुरु जी के आने के कारण दरबार की रौनकें और भी बढ़ गईं। इन्हीं दिनों सन् 1552 में बीबी भानी का विवाह भी कर दिया। बीबी भानी के विवाह बारे एक कहावत प्रचलित है। एक दिन माता मनसा देवी जी गुरु अमरदास जी को कहने लगे कि भानी अब बड़ी हो गई है, इसलिये उसके विवाह बारे कोई विचार करना चाहिये। गुरु जी ने पूछा कि लड़का किस प्रकार का होना चाहिये? तब माता जी ने सहज-स्वभाव में कह दिया कि उस जैसा जो सदा सेवा में लगा रहता है। गुरु जी ने कहा, "उस जैसा तो वह ही है।"

भाई जेठा जी को गुरु जी बहुत प्यार करते थे क्योंकि वह हर समय सेवा में लगे रहते थे। उनकी निष्काम सेवा देखकर गुरु जी ने यह मन बना लिया कि बीबी भानी का विवाह उनके साथ कर दिया जाये। माता मनसा देवी द्वारा भी उस जैसे वर बारे कहने से स्पष्ट हो गया कि माता मनसा देवी जी को भी भाई जेठा जी के साथ बीबी भानी का विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है। बीबी भानी जी भी सेवा के पुंज थे। वह गुरु जी की पिता के रूप में नहीं अपितु गुरु के रूप में सेवा करती थीं। दोनों का विवाह होने से एक अनुपम जोड़ी बन गई। भाई जेठा जी को बाद में गुरु-गद्दी की पेशकश हुई तथा वे गुरु रामदास जी के नाम से चौथे सच्चे पातशाह बने। सिक्ख इतिहास में बीबी भानी एक ऐसी स्त्री थी जो गुरु पुत्री, गुरु पत्नी तथा गुरु जननी हुईं।

बीबी भानी का विवाह होने के पश्चात् भी भाई जेठा जी उसी लगन से सेवा करते रहे। इन दिनों गुरु अमरदास जी ने यह विचार बनाया कि किसी ऐसे स्थान का निर्माण किया जाए, जहां प्रत्येक वर्ष सभी सिक्ख संगतें इकट्ठी हुआ करें तथा सिक्खी के प्रचार में भी सुविधा हो जाए।

उन्होंने एक बावली बनाने की योजना बनाई। सभी संगतों ने इसे स्वीकार कर लिया। बाबा बुड्ढा जी ने इसका उद्घाटन किया तथा बावली की खुदाई आरम्भ हो गई। कुछ ही समय में बावली तैयार हो गई। इस बावली में उतरने के लिये 84 सीढ़ियां बनाई गईं। ये चौरासी सीढ़ियां, चौरासी लाख योनियों से प्रेरित करवाती हैं। गुरु जी का यह उपदेश था कि जो व्यक्ति इन चौरासी सीढ़ियों पर बारी-बारी जपु जी साहिब का पाठ करेगा और हर पाठ के बाद बावली में स्नान करेगा, उसकी

चौरासी काटी जाएगी तथा वह भवसागर को पार कर जायेगा।

बावली का कार्य समाप्त हो जाने के पश्चात् देखा गया कि जल ऊपर नहीं आ रहा था। पानी के रास्ते में एक बड़ी चट्टान थी। उस चट्टान को तोड़े बगैर पानी ऊपर नहीं आ सकता था। गुरु जी ने उसी समय साथ खड़े माणक चन्द को बुलाया तथा अपने पास से हथौड़ा देकर कहने लगे, "यह पकड़ो हथौड़ा और पूरे ज़ोर के साथ चट्टान पर मारो, कड़ से टूट जाएगा।" गुरु जी की आज्ञा से माणक चन्द बावली में उतरा। उसने उस चट्टान पर ऐसा वार किया कि पत्थर टूट गया तथा पानी फव्वारे की भान्ति ऊपर आ गया। देखते ही देखते कुआं पानी से भर गया और माणक चन्द डूब गया, लेकिन गुरु जी की कृपा से वह ऊपर आ गया और सीढ़ियां चढ़ कर बाहर आ गया।



प्रेमा कोढ़ी

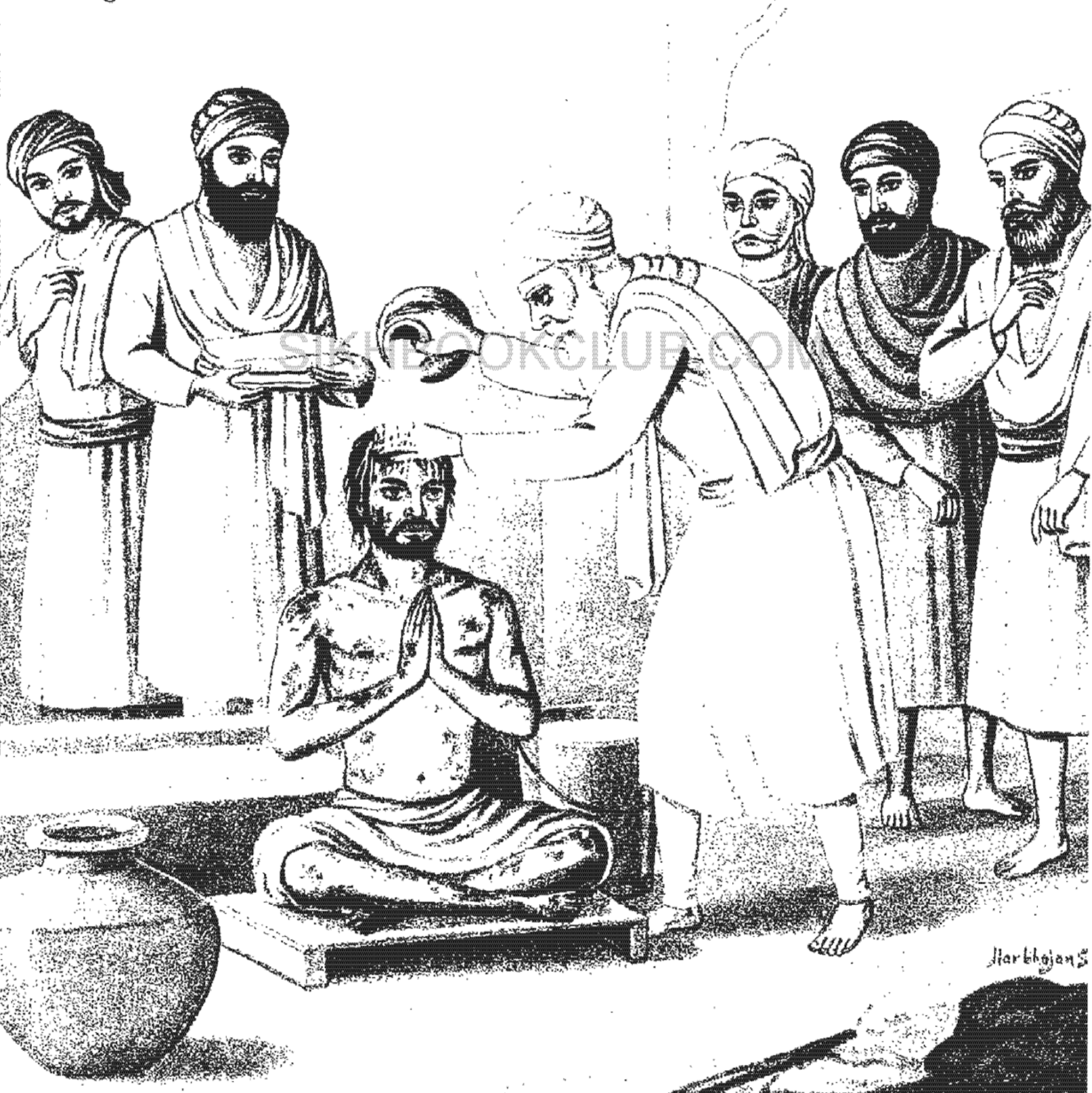
गांव खारी ज़िला लाहौर का रहने वाला एक प्रेमा नामक अनाथ बच्चा था। अनाथ होने के कारण वह बुरी संगति में पड़ गया। उसने कई प्रकार के कुकर्म किये और उसे कोढ़ हो गया। कोढ़ होने के कारण मित्रों ने उसका परित्याग कर दिया और बेचारा भूखा मरने लगा। उसको छूने से भी हर कोई संकोच करता था। यदि किसी को तरस भी आ जाता था तो वह रोटी दूर से ही फैंक देता। एक दिन एक दयालु व्यक्ति को उस पर दया आ गई तथा उसने उसके गले में मिट्टी का एक कटोरा लटका दिया। अब लोग उस कटोरे में ही रोटी डाल देते थे। इस प्रकार समय व्यतीत होता गया। एक दिन उसने गुरु अमरदास जी की महिमा सुनी। तब वह बड़ी कठिनाई से चलता हुआ गोईंदवाल पहुंच गया। वहां उसे समय पर लंगर में से भोजन तथा कीर्तन सुनने को मिलता था। फिर दिन के समय वह बावली के पास जाकर बैठ जाता तथा वही कटोरा बजा कर पाठ करता रहता। बावली के दर्शनों को आई संगत की चरण-धूलि माथे पर लगाता और उसी को अपने जख्मों पर भी लगाता रहता।

एक दिन एक सिक्ख ने गुरु जी को प्रेमा कोढ़ी के बारे में सब कुछ बताया। गुरु जी ने उसी समय एक सिक्ख को भेजकर प्रेमा कोढ़ी को वहां बुलाया जहां गुरु जी प्रतिदिन स्वयं स्नान किया करते थे। गुरु जी ने अपने हाथों से उसे तख्ती पर बिठा कर स्नान कराया और सुन्दर कपड़े पहनाए। प्रेमा का कोढ़ जाता रहा और वह स्वस्थ, सुन्दर और एक छबीला युवक बन गया। सब उसके नये रूप को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। गुरु जी ने कहा, "यह प्रेमा आज से मेरा मुरारी पुत्र है। प्रेमा काया-कल्प के बाद मुरारी हुआ है, अब इसमें कोई दोष नहीं है और न ही किसी प्रकार का उसे कोई रोग है।" गुरु जी ने संगतों को सुना कर कहा कि संगत में कोई ऐसा सिक्ख है जो मेरे पुत्र के साथ अपनी पुत्री का रिश्ता करे। वहां उस समय गुरु-घर का एक पुराना सिक्ख शीहां बैठा था। उसने उठ कर कहा, "महाराज! मुझे अपनी पुत्री मथरो के लिए मुरारी का रिश्ता स्वीकार है।" जब शीहां यह कह ही रहा था तब शीहें की घरवाली जो उस समय लंगर में भोजन पका रही थी, गुरु जी के सामने आ गई। वह कहने लगी, "महाराज! शीहें का तो दिमाग ठिकाने नहीं है, मुझे तो यह रिश्ता बिल्कुल स्वीकार नहीं है। क्या पता, यह लड़का किस कुल, किस जाति तथा वंश का है। मैंने अपनी लड़की का जन्म भ्रष्ट नहीं करना है?"

गुरु जी ने कहा, "यह मेरा पुत्र है, इसलिये यह मेरे ही खानदान में से है। यह मथरो-मुरारी की जोड़ी ऊपर से लिखी आई है, इसलिये आपको इसमें कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हम अपने पुत्र का विवाह स्वयं करेंगे।"

शीहें की घरवाली को समझ आ गई। वह गुरु जी के सामने माथा टेक कर तथा 'धन्य महाराज, जिस प्रकार आप की इच्छा', कह कर चली गई।

तत्पश्चात् मथरो-मुरारी का विवाह हो गया। दोनों को गुरु-घर का प्रचारक नियुक्त किया गया और बाई मंजियों में से एक मंजी भी प्रदान की गई।



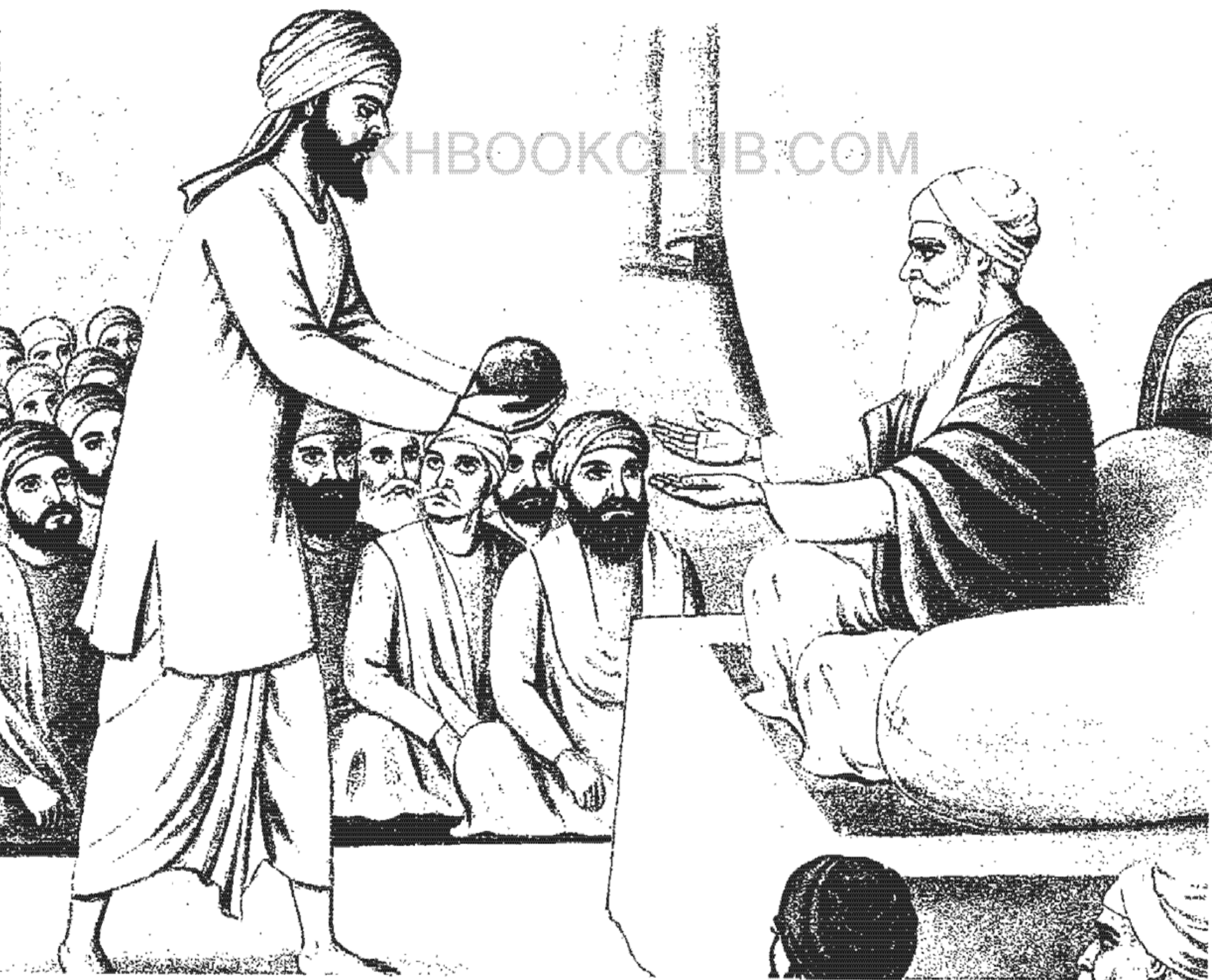
गंगू खत्री

गंगू खत्री गढ़शंकर का एक बड़ा शाहूकार था। उसका शाहूकाराना दूर-दूर तक चलता था और उसे किसी वस्तु की कमी नहीं थी, लेकिन कुदरत के खेल को कौन जानता है। उसका व्यापार इतना गिर गया कि वह रोटी से भी तंग हो गया। किसी ने गुरु अमरदास जी के बारे में उसे बताया, तब वह गोईंदवाल में गुरु जी के दर्शनों को आया। गुरु जी से भेंट करने के लिये उसके घर में कोई नकदी नहीं थी, इसलिये वह एक गुड़ की रोड़ी ही भेंट के लिये साथ ले आया। लंगर खाकर जब वह दरबार में हाजिर हुआ तो वह गुड़ की रोड़ी को चढ़ावे के रूप में भेंट करने के लिये झिझक गया। वह सोचने लगा कि सिक्खों की ओर से कितनी कीमती भेंटें अर्पित की जा रही हैं लेकिन उसके पास एक गुड़ की रोड़ी है। गुरु जी सब कुछ जानते थे। उन्होंने गंगू की आन्तरिक दशा को पहचान लिया। उन्होंने आवाज लगाकर गंगू को अपने पास बुला लिया और उससे गुड़ की रोड़ी स्वयं मांग ली। गुरु जी ने कुछ गुड़ स्वयं खाया बाकी संगतों में बांट दिया। भाई गंगू काफी समय गुरु घर की सेवा करता रहा और गुरु जी के किसी काम आ जाने से बहुत ही प्रसन्न होता था। गुरु जी उसकी सेवा-भावना से अत्यन्त प्रसन्न थे और उन्होंने अपने पास से उसे कुछ मोहरें देकर दिल्ली जाने की आज्ञा दे दी। उन्होंने कहा, "इस धन राशि से दिल्ली जाकर शाहूकारा करो, वाहिगुरु बरकत करेंगे।"

भाई गंगू ने गुरु जी द्वारा दी हुई धन-राशि से अपना कारोबार आरम्भ कर लिया और वह कुछ समय में ही एक बड़ा शाहूकार बन गया। यह कहा जाता है कि एक बार लाहौर के शासक को एक लाख मोहरों की एक ही हुंडी की आवश्यकता थी। दिल्ली में कोई भी शाहूकार एक हुंडी नहीं दे सका, परन्तु भाई गंगू ने एक लाख मोहरें रखकर एक दर्शनी हुंडी पहुंचा दी। उसकी इतनी सामर्थ्य को देखकर मुगल शासक बहुत प्रभावित हुए और उसका मुगल दरबार में बहुत सम्मान बढ़ गया।

उस समय दिल्ली में एक गुरसिख की लड़की का विवाह था। वह सहायता प्राप्ति के लिये गोईंदवाल में गुरु जी के पास आया। गुरु जी ने पच्चास रुपये की हुंडी भाई गंगू के नाम की लिख दी। जब दिल्ली में वह सिक्ख भाई गंगू को मिला तब भाई गंगू ने 50 रुपये देने से इन्कार कर दिया और कहा, "यहां गुरु जी के खाते में कोई राशि नहीं है।" वह गुरु जी के पास गोईंदवाल आया तथा आप-बीती कह सुनाई। गुरु जी ने अपने पास से उसे पचास रुपये देकर विदा किया।

कुछ समय पश्चात् भाई गंगू के काम का पतन होने लगा। काम की हालत यहां तक पहुंच गई कि भाई गंगू ऋणी हो गया। कर्जदारों से जान बचाने के लिये वह फिर गोईंदवाल में आ गया। दिन-रात गुरु-घर की सेवा करे, लेकिन गुरु जी के समक्ष जाने का उसमें उत्साह न हुआ। इस प्रकार की कार-सेवा करने के पश्चात् गुरु जी ने स्वयं उसको अपने पास बुलाया और उस पर कृपा-दृष्टि की। भाई गंगू ने हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी। गुरु जी ने उसे क्षमा कर दिया। सुन्दर कपड़े पहना कर उसको अपने गांव जाने की आज्ञा दी। संगतों को इस बात की समझ आई कि धन प्राप्त कर कभी भी अपने गुरु को भुला नहीं देना चाहिये।



भाई लंगाह

भाई लंगाह गांव तलवंडी का रहने वाला था। एक टांग से लंगड़ा होने के कारण सब उसे लंगाह ही कहते थे। वह गुरु-घर का बहुत प्रेमी था और प्रतिदिन गुरु जी के लिये दही लेकर आता था। तलवंडी गोईंदवाल से तीन मील दूर थी। यह तीन मील का पथ वह अपनी फौड़ियों के साथ चल कर तय करता और गुरु घर में प्रतिदिन हाजिर होता था। गुरु जी उसके दही के साथ ही नाश्ता करते थे।

एक दिन जब वह गोईंदवाल आ रहा था तब गांव के चौधरी ने उसकी फौड़ी छीन ली और कहने लगा, "जिस गुरु के लिये तू दही लेकर जात्ता है, क्या वे तेरी टांग ठीक नहीं कर सकते?"

भाई लंगाह के लिए अब चलना बहुत कठिन था, परन्तु दही भी हर हाल में पहुंचाना था इसलिये उस ने एक डंडा लिया और उसके सहारे वह धीरे-धीरे गोईंदवाल पहुंचा, परन्तु लंगाह के समय पर न पहुंचने के कारण गुरु जी को कोई और दही दे गया। लेकिन गुरु जी ने वह दही लेने से इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, "जब तक हमारा सच्चा सिक्ख दही लेकर नहीं आता, हम नाश्ता नहीं करेंगे।" कुछ समय के पश्चात् भाई लंगाह भी गिरता हुआ दही लेकर पहुंच गया। गुरु जी ने उसका दही लिया और नाश्ता किया। फिर गुरु जी ने लंगाह को अपने पास बुलाया और कहने लगे, "भाई लंगाह! आज क्या बात थी, जिससे इतनी देरी हो गई?" भाई लंगाह ने अपनी सारी दुख भरी घटना सुना दी और कहा कि वह बड़ी कठिनाई से यहां आया है। गुरु जी उसका सारा वृत्तान्त सुनकर कहने लगे, "अब हमें तुम्हारी टांग ठीक करवानी ही पड़ेगी। तू अब इस प्रकार कर कि सीधा लाहौर चला जा और वहां पर सूफी संत हुसैन को जाकर मिल और वह तुम्हारी टांग ठीक कर देंगे। उसको हमारे बारे बतलाना कि तुम्हें हम ने भेजा है।" गुरु जी की बात सुन कर भाई लंगाह कुछ गुर-सिखों की सहायता से लाहौर चला गया और सूफी संत शाह हुसैन के दरबार में पहुंच गया। वहां जाकर उसने बताया कि उसको गुरु अमरदास जी ने भेजा है। फिर उसने विस्तार से अपनी टांग के बारे में बताया। भाई लंगाह की यह सारी बातें सुनकर शाह हुसैन बड़े क्रोध में आ गया और ऊंची-ऊंची गालियां निकालने लगा। फिर उसने एक डंडा लिया और जोर-जोर से भाई लंगाह को मारने लगा। लंगाह के पास भागने के अतिरिक्त कोई और उपाय नहीं था। डंडों की मार से बचने के लिये वह ज़ोर से भागने लगा और बाहर जाकर उसने देखा कि

उसकी टांग बिल्कुल ठीक थी।

वह वापस डेरे में आया और शाह हुसैन के पांव पड़ गया। शाह हुसैन ने अपने पांव पीछे खींच लिये और कहने लगे, "उसके चरणों की धूल लो जिसने तुम्हें यहां भेजा है। करने-करवाने वाला वह स्वयं ही है, हमारा तो केवल नाम ही आया है। उन पर विश्वास करो, जो कुछ मांगना है, उससे मांगो। हमारे जैसे तो उसके सैंकड़ों सेवक हैं।"

भाई लंगाह वापस गोईंदवाल आ गया और गुरु जी को माथा टेक कर कहने लगा, "महाराज! यह आप का अद्‌भुत खेल है, यह सब कुछ तो आप कर सकते थे फिर मुझे लाहौर किस लिये भेजा।"

गुरु जी मुस्कराने लगे और कहने लगे, "एक वाहिगुरु पर विश्वास रखो, वह सब कुछ करने वाले हैं।"



अकबर बादशाह का गोईंदवाल आना

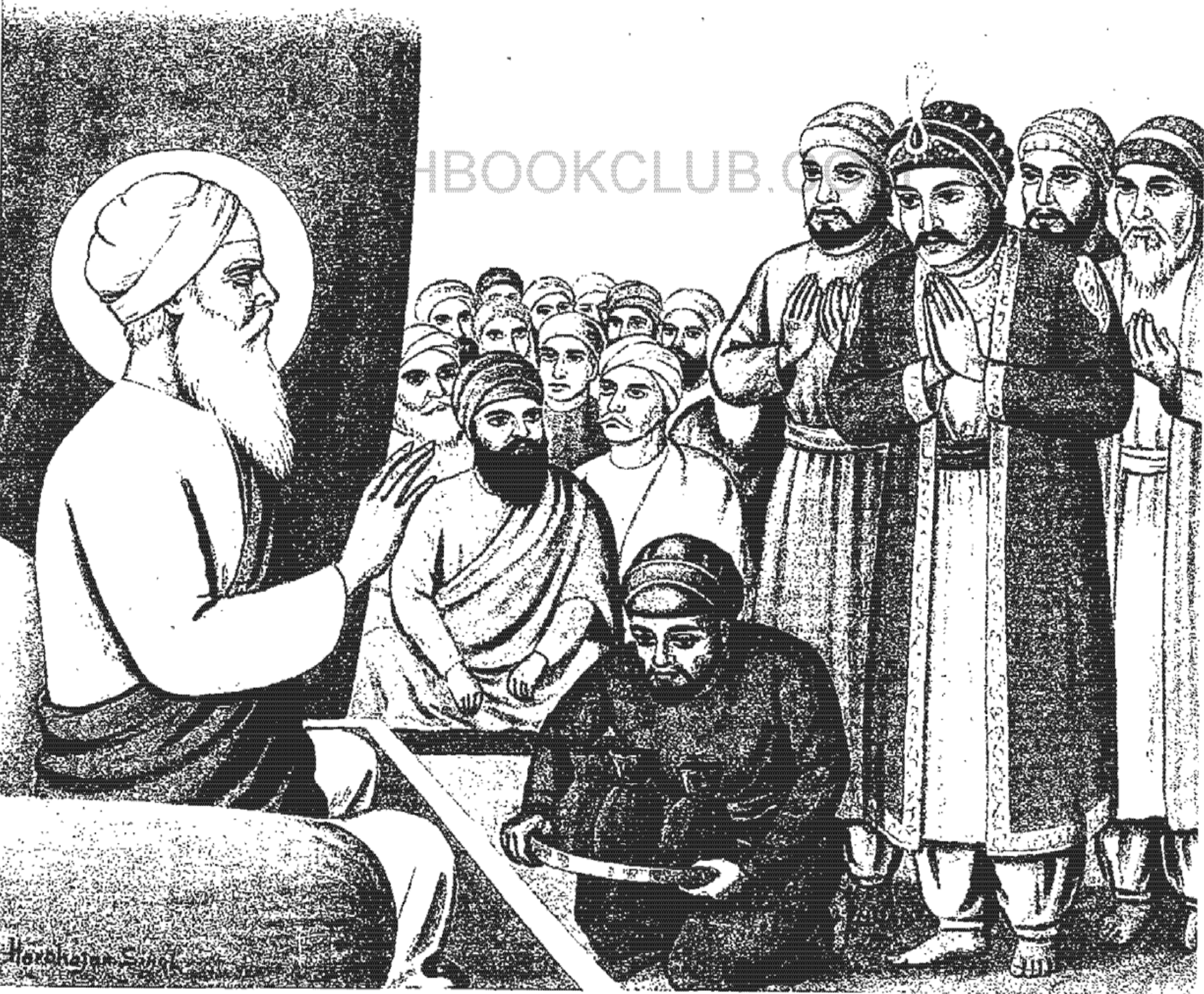
उच्च जाति के ब्राह्मण और खत्री गुरु जी के सांझे लंगर को सहन नहीं करते थे। वे किसी भी ढंग से लंगर को बन्द करवाना चाहते थे, जहां पर नीच जाति के लोग उच्च जाति के लोगों के साथ एक पंक्ति में ही बैठकर भोजन किया करते थे। उन्होंने गोइंदे मरवाहे के पुत्र को इस प्रकार भड़काया कि वह जाकर बादशाह अकबर के पास शिकायत करे। उसने शिकायत की कि उसने अपनी जमीन पर एक साधु को बिठाया था, लेकिन वह साधु जमीन पर कब्जा करके बैठ गया है। अकबर ने लाहौर के नवाब को जांच के लिये भेजा। लाहौर का नवाब तथा उसके अधिकारी जब गोईंदवाल पहुंचे तो वे गुरु जी के भक्ति-भाव को देखकर बहुत प्रभावित हुये। गुरु साहिब एक परमात्मा को मानते थे तथा जाति-पाति से ऊपर उठ कर एक लंगर में भोजन करते थे। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि मरवाहा झूठ बोल रहा है।

इसके पश्चात् ब्राह्मणों ने सनातनी हिन्दुओं के साथ मिलकर प्रार्थना-पत्र दिया कि गुरु अमरदास जी जाति-पाति समाप्त कर रहे हैं और उन्होंने एक नया धर्म चलाकर देवताओं की पूजा, गंगा स्नान आदि सब कुछ बन्द कर दिये हैं। बादशाह अकबर उस समय लाहौर आया हुआ था। उसने गुरु जी को सन्देश भेजा कि वे अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिये लाहौर पहुंचें। गुरु जी ने भाई जेठा जी को बुलाया और उन्हें अपनी ओर से स्पष्टीकरण देकर लाहौर भेज दिया। भाई जेठा जी जब कचहरी पहुंचे, तब उन्होंने सिक्ख मत के सारे पहलुओं को विस्तारपूर्वक दर्शाया। उन्होंने बताया कि सिक्ख केवल एक परमात्मा को मानते हैं, इसलिये देवी-देवताओं की पूजा का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। मनुष्य ने जातियां अपने स्वार्थ के लिये बनाई हैं। ऐसे स्वार्थ को समक्ष रखकर ब्राह्मण शिकायतें लेकर आपके पास आये हैं। बादशाह अकबर ने भाई जेठा की सारी दलीलें बड़े ध्यान से सुनीं और ब्राह्मणों का प्रार्थना-पत्र रद्द कर दिया। बादशाह अकबर भाई जेठा की बातें सुनकर बहुत प्रभावित हुआ और उसने गुरु जी को मिलने की इच्छा प्रकट की। भाई जेठा जी ने उनको इसके लिए खुला निमन्त्रण दे दिया कि जब भी बादशाह को अवसर मिले, वे गुरु जी से मिलने के लिये आ सकते हैं।

कुछ समय पश्चात् बादशाह अकबर अपने अधिकारियों के साथ गोईंदवाल पहुंचा। यह एक विचित्र बात थी कि बादशाह एक फकीर के दर्शनों के लिये नंगे पांव चल कर आए। लाहौर के नवाब ने भले ही, सड़क से लेकर गुरु साहिब के डेरे तक

गलीचे बिछा दिये थे लेकिन अकबर ने गलीचों पर पांव तक नहीं रखा और रेत पर चलता हुआ गुरु जी के लंगर तक पहुंचा। यहां पर गुरु जी की मर्यादा को समक्ष रखकर वे पहले लंगर में गये। सभी जातियों के लोगों को एक समय लंगर में पेट भर भोजन करते हुए देखकर अकबर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ।

वह फिर गुरु जी के पास गया तथा उनके प्रवचन सुने। गुरु जी ने उनको जीवन-मार्ग बारे अवगत कराया। गुरु जी के लंगर की प्रथा से प्रसन्न होकर बादशाह ने उस लंगर के नाम जागीर लगानी चाही, परन्तु गुरु जी ने यह कह कर सहायता लेने से इन्कार कर दिया कि लंगर केवल उपासकों की उगाही के साथ ही चलते हैं। जागीरों से चलने वाले लंगर नहीं रहते। उन्होंने यह भी कहा कि सब कुछ प्रभु का दिया हुआ है। बादशाह अकबर गुरु जी से इतना प्रभावित हुआ कि हर वर्ष वैसाखी पर वह एक लाख बीस हजार रुपये अरदास के रूप में गोईंदवाल भेजते थे।



ज्योति ज्योत समाना

गुरु अमरदास जी के ज्योति ज्योत समाने का समय जब समीप आया तो आप ने गुरु गद्दी किसी योग्य उत्तराधिकारी को सौंपने के लिये सोच-विचार किया। सब लोग यह जानते थे कि सिक्खों में श्रेष्ठ भाई जेठा जी तथा भाई रामा जी ही थे परन्तु फिर भी गुरु जी परीक्षा लेना चाहते थे ताकि संगतों को किसी प्रकार का भ्रम न रहे।

उन्होंने एक दिन भाई रामा जी तथा भाई जेठा जी को बुलाकर कहा कि वे सत्संग के लिये दो चबूतरे बनाना चाहते हैं, जिस पर बैठ कर दूर तक उपस्थित संगत को सम्बोधित किया जा सके। उन्होंने चबूतरों की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊंचाई उनको समझा दी। भाई रामा जी, जो गुरु जी की बड़ी लड़की दानी के साथ विवाहित थे, स्वभाव से इतने विनम्र थे कि वे हर समय सेवा में ही लगे रहते थे। भाई जेठा जी भी सेवा-भाव में पीछे नहीं थे। वे बड़े ज्ञानी तथा समझदार व्यक्ति थे, जो राज-दरबार में खुल कर बातचीत कर सकते थे।

भाई रामा जी तथा भाई जेठा जी प्रतिदिन संध्या तक एक चबूतरा तैयार कर देते लेकिन गुरु जी उसमें कोई त्रुटि निकाल कर तोड़ने की आज्ञा कर देते। इसी प्रकार सात दिन तक चलता रहा, पर कोई भी चबूतरा स्वीकार न किया गया। आठवें दिन भी जब गुरु जी ने रामा जी के चबूतरे में त्रुटि निकाल कर उसे दोबारा बनाने के लिए कहा, तब भाई रामा जी कहने लगे, "मैंने यह चबूतरा तोड़ कर और नया नहीं बनाना। जिस प्रकार आपने बताया था मैंने उसी प्रकार बनाया है परन्तु दीर्घायु होने के कारण आपको याद नहीं रहता है। गुरु जी ने जब भाई जेठा जी द्वारा बनाए गए चबूतरे में नुक्स निकाला तब वह कहने लगे, "महाराज! मेरे ऊपर कृपा करो कि मैं आपकी इच्छानुसार चबूतरा बना सकूं।

गुरु जी उसकी यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि गुरु गद्दी भाई जेठा जी को ही दी जाए। आप ने अपने इस निश्चय बारे समस्त संगत को बता दिया। अगले दिन भाई जेठा जी को बुलाकर अपने हाथों से स्नान करवाया और सुन्दर कपड़े पहना कर तख्त पर बिठा दिया। बाबा बुड्ढा जी ने गुरु गद्दी की रस्में पूरी कीं। फिर गुरु अमरदास जी ने बताया कि आज से भाई जेठा जी नये नाम गुरु रामदास के रूप में गुरु होंगे। गुरु नानक देव जी की समस्त कृपा अब इनके पास से ही प्राप्त होगी। उन्होंने फिर गुरु रामदास जी के आगे माथा टेका। तत्पश्चात् बाबा बुड्ढा जी, बाबा मोहरी जी और समस्त संगत उनके चरणों में पड़ गई।

कुछ दिनों के पश्चात् ही गुरु अमरदास जी ने कहा कि उनको अब ऊपर से बुलावा आ गया है। वे एक चिट्टी चादर तान कर लेट गये और कुछ समय के पश्चात् उनकी ज्योति, प्रभु की ज्योति में विलीन हो गई और वे ज्योति-ज्योत समा गये।



गुरु रामदास जी

प्रकाश

(गुरु) रामदास जी का जन्म चूना मंडी लाहौर में 25 सितम्बर सन् 1534 को बाबा हरिदास जी के घर माता अनूपी जी के गर्भ से हुआ। उनका नाम रामदास जी रखा गया, पर क्योंकि घर में वे सबसे बड़े थे, इसलिए उनका नाम 'जेठा' ही प्रसिद्ध हो गया। उनका एक छोटा भाई हरिदयाल और बहन रामदासी थी। आप बड़े सुन्दर, सुशील तथा हर समय मुस्कराते रहते थे। आपका प्रभु के साथ बचपन से ही असीम प्यार था। आप बड़े धैर्यवान तथा मिलनसार थे। आप जब कभी किसी महापुरुष या साधु-महात्मा को मिलते थे तब उसे अपने घर ले आया करते थे तथा उसे भोजन खिलाकर बड़े प्रसन्न होते थे। जब बच्चों के साथ खेलते थे तब उनको भी प्रभु-भक्ति की साखियां सुनाया करते थे।

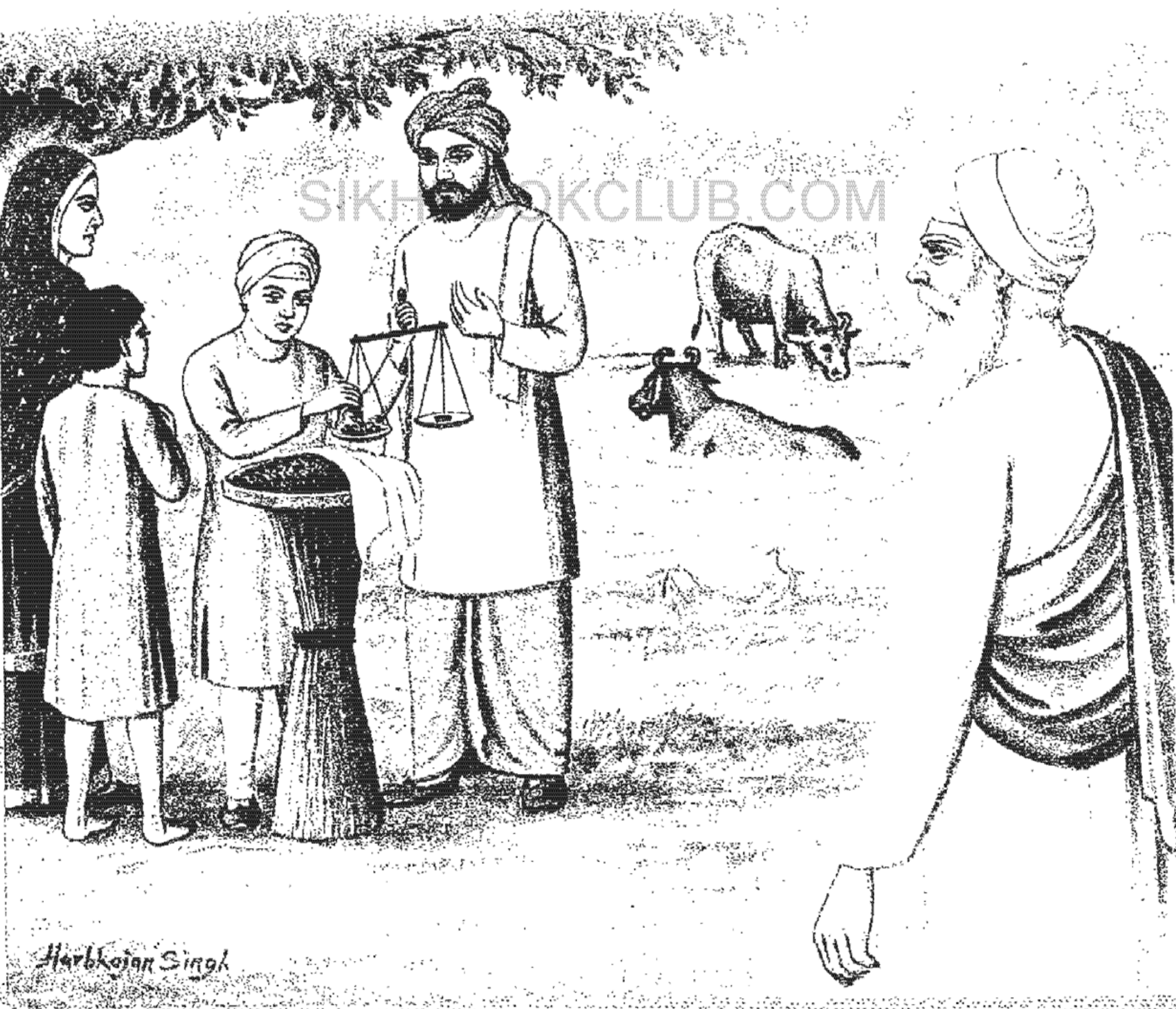
अभी आप सात वर्ष की आयु में थे जब आप जी के माता-पिता स्वर्ग सिधार गये। आप अल्पायु में ही अनाथ हो गये।

भाई-बहनों के पालन-पोषण का दायित्व भी आप के ऊपर आ गया, इसलिये माता-पिता के लाड-प्यार के स्थान पर आप को अथाह परिश्रम करना पड़ा। आप जी के नाना-नानी ने जब देखा कि देख-भाल के लिये आपका कोई नहीं रहा तो वे आप सब को अपने गांव बासरके ले आये। आपके नाना जी दुकान करते थे। परिवार बड़ा होने के कारण गुजारा बड़ी कठिनाई से होता था, इसलिये यहां आकर भी आपके लिये कोई न कोई काम करना जरूरी था। उस समय बासरके गांव के समीप एक विशाल सरोवर था, जिसके किनारे पीपल के छायादार वृक्ष थे। इन वृक्षों के नीचे आप ने घुंघनियों की छाबड़ी लगा ली। मीठा-बोलने तथा मिलनसार स्वभाव के कारण आप गुजारे योग्य पैसे कमा लेते थे।

गुरु अमरदास जी भी बासरके गांव के रहने वाले थे। भाई जेठा जी के नाना-नानी जी को वे अच्छी तरह से जानते थे। एक ही वंशज होने के कारण उनके अच्छे सम्बन्ध थे। जब उनको अनाथ बच्चों के बारे में पता चला तो उनको बहुत तरस आया। वे बच्चों की हर प्रकार से कुछ न कुछ सहायता करना चाहते थे। वे भाई जेठा जी को घुंघनियां बेचते हुये बड़े प्यार से मिलते थे तथा उनके साथ विचार-विमर्श भी करते थे।

जब गुरु अमरदास जी को सन् 1546 में गोईंदवाल शहर का निर्माण करने तथा वहां पर ही रहने का आदेश मिला तो भाई जेठा जी ने भी वहां जाने का विचार बना

लिया। उस समय उनकी आयु 12 वर्ष की हो गई थी। नये शहर में कमाई की अधिक सम्भावना को सम्मुख रखते हुए उन्हें नानी जी ने भी नहीं रोका। पांच वर्ष बासरके गांव में रहने के कारण गुरु अमरदास जी का सारा परिवार भाई जेठा जी से परिचित था और मिलनसार स्वभाव होने के कारण सभी उन को बहुत प्यार करते थे।



सतिगुरु की सेवा

जब भाई जेठा जी गोईंदवाल पहुंचे तब उन्होंने देखा कि गोईंदवाल का निर्माण कार्य बड़े जोर-शोर से हो रहा है और गांव के लोग बड़े उत्साह तथा प्रेम-भाव से सेवा कर रहे हैं। उन्होंने वहां जाकर घुंघनियों की छाबड़ी लगा ली। जब घुंघनियां बिक जातीं तब वह भी सेवा में लग जाते। गुरु अमरदास जी, जिनको अभी गुरु-गद्दी नहीं मिली थी, प्रातः शीघ्र उठ कर पानी की गागर भर कर खडूर साहिब के लिये चल पड़ते थे तथा वहां गुरु अंगद देव जी को स्नान करवा कर वापस गोईंदवाल आ जाते थे। भाई जेठा जी के कामकाज पर वे बहुत प्रसन्न थे। बाबा जी ने उन के रहने का भी अच्छा प्रबन्ध कर दिया। सब लोग उन को बाबा जी के परिवार का एक सदस्य ही समझते थे, क्योंकि बासरके गांव से वे बाबा जी के साथ ही आये थे। वे भी परिवार के साथ अच्छी प्रकार से मिल-जुल गये थे। वे माता मनसा देवी को अपनी असली माता समझते थे तथा माता मनसा देवी भी उन को अपना पुत्र ही समझती थीं। इस प्रकार छः वर्ष तक गोईंदवाल का निर्माण कार्य चलता रहा। जिस प्रकार गुरु अमरदास जी गोईंदे को कहते गये, उसी प्रकार वह शहर का निर्माण करता गया। सैंकड़ों की संख्या में सिक्ख संगतों को शहर का निर्माण करते हुये देख कर गोईंदे के शरीकों को यह साहस न हुआ कि वे भूत-प्रेतों का डर देकर काम में कोई रुकावट डाल सकें। अब वे भी निर्माण कार्य में हाथ बंटाने लगे। जब शहर का काफी निर्माण हो गया तब बाबा अमरदास जी गुरु जी से शहर का नाम पूछने के लिये गये। गुरु जी ने नये नगर का नाम गोईंदवाल रखने के लिये कहा। यही नाम तत्पश्चात् प्रसिद्ध हो गया।

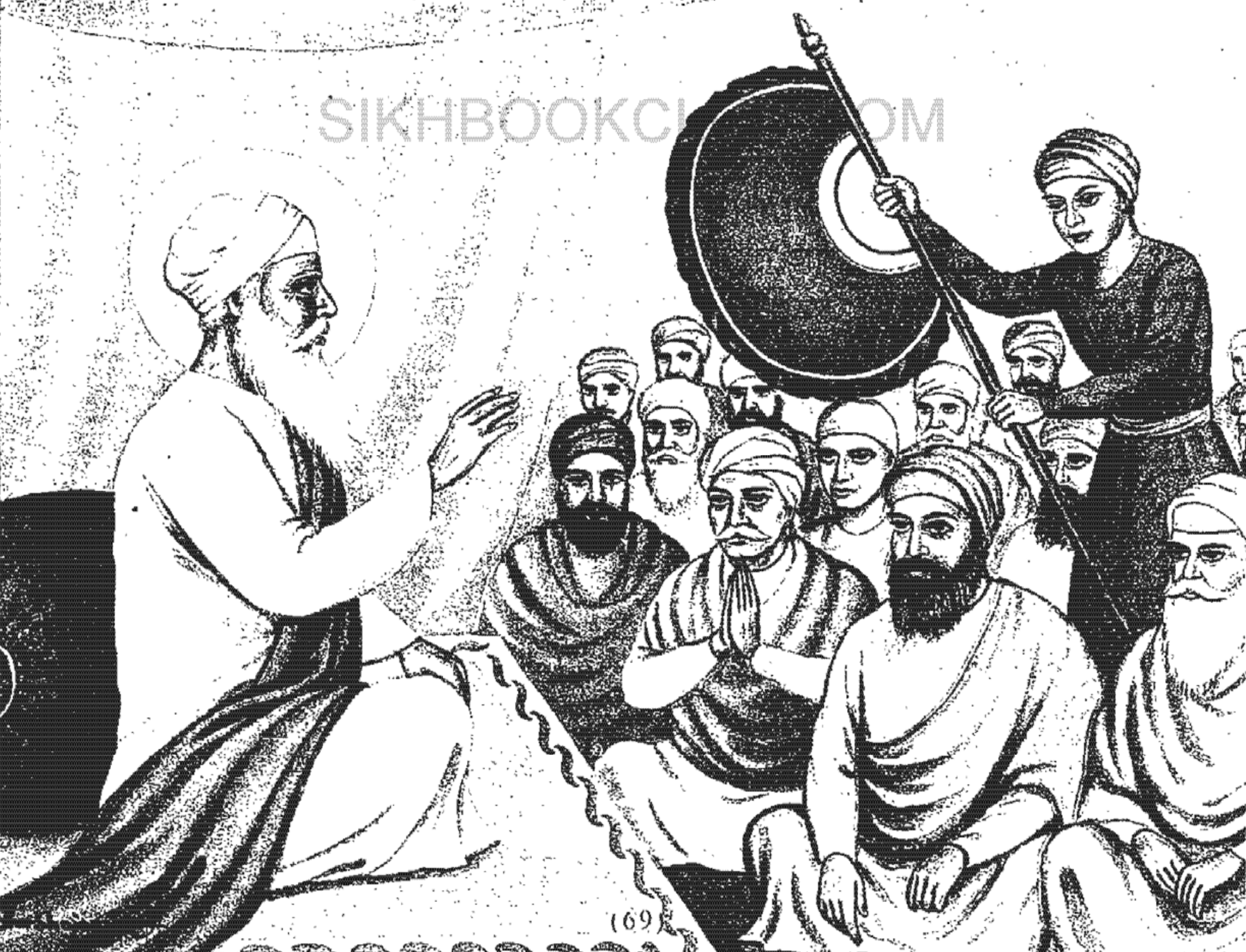
गुरु अंगद देव जी ज्योति ज्योत समाने से पहले गुरु-गद्दी बाबा अमरदास जी को सौंप गये थे। गुरु-गद्दी सौंपने के बाद उन्होंने बाबा जी को यह आदेश किया कि वह अपनी पक्की रिहायश गोईंदवाल ही रखे ओर वहाँ रहकर सिक्खी का प्रचार करें। गोईंदवाल क्योंकि बड़ी सड़क पर स्थित था, इसलिये इस स्थान पर दूर-दूर से लोगों का आना-जाना आसान था।

जब 29 मार्च सन् 1552 ईः को गुरु अंगद देव जी ज्योति ज्योत समा गये, तब गुरु अमरदास जी स्थायी तौर पर गोईंदवाल में आ गये। अब भाई जेठा जी को गुरु जी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। वे प्रत्येक समय उनके साथ रहते थे और उनकी आज्ञा का तुरन्त पालन करते थे। संगत के लिये हर समय लंगर चलता था,

परन्तु भाई जेठा जी फिर भी घुंघनियों की छाबड़ी ही लगाते थे। गुरु घर की सेवा से वे कभी भी दूर नहीं होते थे।

गुरु अमरदास जी जब देखते कि भाई जेठा जी दीवान की हाजरी भी भरते हैं और सेवा भी मन से करते हैं तथा कमाई भी बड़े परिश्रम एवं ईमानदारी से करते हैं तब उन्होंने भाई जेठा जी को अपने पास बुलाया और कहा, "क्या इच्छा लेकर यहां आये हो?" भाई जेठा जी ने कहा, "मैं सब इच्छाएं त्याग कर यहां आया हूं।"

गुरु जी उन का यह उत्तर सुन कर बहुत प्रसन्न हुये।



विवाह

जब गुरु अमरदास जी सन् 1552 ई: में गुरु-गद्दी पर बैठे तब भाई जेठा जी की आयु अट्ठारह वर्ष की थी। वे एक अद्वितीय व्यक्तित्त्व के मालिक थे। लम्बा, सुडोल शरीर तथा नूरानी चेहरा प्रत्येक देखने वाले का मन मोह लेता था।

यह बात दिसम्बर सन् 1552 की है कि माता मनसा देवी ने गुरु अमरदास जी को कहा कि बीबी भानी अब जवान हो गई है इसलिये उसके लिये कोई योग्य वर ढूंढना चाहिए। जब गुरु जी ने स्वाभाविक तौर पर पूछा कि लड़का किस प्रकार का होना चाहिए तब उन्होंने कहा कि भाई जेठा जी जैसा। गुरु अमरदास जी ने कहा कि उस जैसा तो वह ही है।

वास्तव में गुरु अमरदास जी और माता मनसा देवी जी भाई जेठा जी को भली भान्ति जानते थे और उनके मिलनसार स्वभाव से परिचित थे तथा काफी समय से उन्होंने मन में धारण किया हुआ था कि बीबी भानी के लिये भाई जेठा जी ही योग्य वर हैं। बीबी भानी उनकी सबसे छोटी संतान होने के कारण बहुत लाडली थीं। वह भी गुरु जी से बहुत प्यार करती थीं और हर समय उनकी सेवा में लीन रहती थीं। वह स्वभाव की सुशील, संयमी तथा नम्रता की मूर्ति थीं। गुरु जी की शिक्षा पर चलते हुये वह हर समय प्रभु को स्मरण किया करती थीं। वह सादा पहरावा पहन कर बहुत प्रसन्न होती थीं और गहने पहनना तो वह बिल्कुल पसन्द नहीं करती थीं।

उन का नित्य प्रति व्यवहार यह था कि प्रभात काल में उठ कर वह गुरु जी को अपने हाथों से स्नान करवाती थीं।

जब गुरु जी और माता मनसा देवी जी इस बात से सहमत हो गये कि भाई जेठा जी का शुभ विवाह बीबी भानी के साथ कर दिया जाए तो एक दिन गुरु जी ने भाई जेठा जी को अपने पास बुलाया। भाई जेठा जी हाथ जोड़ कर नमस्कार करके उनके पास बैठ गये। गुरु जी कहने लगे, "भाई जेठा जी, हम आप से कुछ मांगना चाहते हैं।"

भाई जेठा जी बोले, "महाराज! आदेश दो आपके लिए मेरी जान भी हाजिर है। मैं तो हर समय यही सोचता रहता हूं कि मैं किसी प्रकार आप के काम आ सकूं तथा आप की सेवा करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हो सके। आप का आदेश मेरे सिर-माथे पर है, आदेश करो।"

गुरु जी ने कहा, "हम आप का यह उत्तर सुन कर बहुत प्रसन्न हुये हैं। हम अपनी

लाडली पुत्री भानी के लिये आप का हाथ मांगना चाहते हैं। सोच-विचार करके आप हमें बताओ।"

भाई जेठा जी चकित रह गये। वह अपने आप को गुरु घर का सेवादार समझते थे। उन्होंने कभी भी यह नहीं सोचा था कि वह गुरु घर के मेहमान बन सकते हैं। परन्तु अब तो आदेश हो चुका था तथा उस को मानना ही वे अपना कर्त्तव्य समझते थे, इसलिये वे कुछ समय तक चुपचाप बैठे रहे।

कुछ दिनों के पश्चात् गुरु मर्यादा के अनुसार बीबी भानी का विवाह भाई जेठा जी के साथ हो गया। बीबी भानी तथा (गुरु) रामदास जी गुरु जी से अलग होकर कहीं और नहीं जाना चाहते थे, इसलिये उन्होंने गुरु जी से प्रार्थना की कि उनको समीप ही एक मकान दे दिया जाए ताकि पहले की भान्ति ही वे गुरु जी की सेवा करते रहें। गुरु जी ने थोड़े समय में ही उनके लिये एक मकान तैयार करवा दिया। (गुरु) रामदास जी तथा बीबी भानी ने पहले की भान्ति ही नित्य कर्म जारी रखा।



गुरु-गद्दी

भाई जेठा जी ने गुरु घर का मेहमान बनने के पश्चात् भी सेवा में कोई कमी नहीं आने दी। वे पहले की तरह ही लंगर की सेवा करते, पंखा झुलाते, पानी पिलाते तथा टोकरी ढोते थे। एक दिन भाई जेठा जी के वंशज गोईंदवाल में आये। उन्होंने यहां आकर जब देखा कि भाई जेठा जी गुरु जी के मेहमान होने के बावजूद भी टोकरी ढो रहे हैं तब वे बड़े गुस्से में आ गये और बड़े रोष में गुरु अमरदास जी को कहने लगे, "आप अपने जंवाई से भी टोकरी ढोने का काम करवा रहे हो। यह बात उचित नहीं है। इससे सोढी कुल को दाग लगता है।"

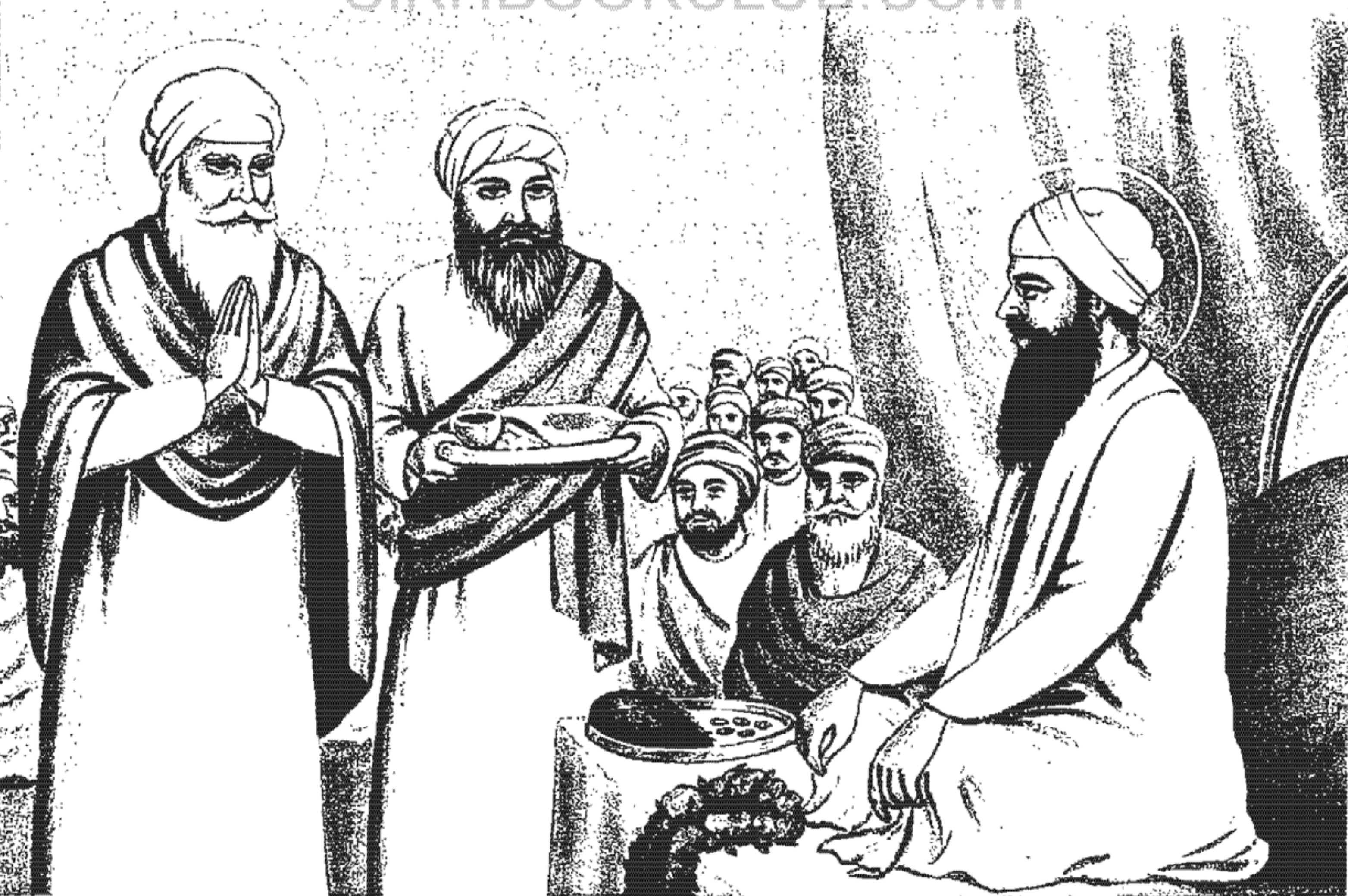
लेकिन गुरु जी ने कहा, "इन्होंने आपके कुल को क्या दाग लगाना है. इन्होंने तो आपके कुल का कल्याण कर देना है। आपके कुल का नाम चमका देना है। जो आप मिट्टी की टोकरी देखते हो, यह मिट्टी की टोकरी नहीं है, इन के सिर पर तो छत्र झुलना है। यह सेवा-भाव एक चुम्बक की भान्ति है जिस ने अब मुझे अपने बस में कर लिया है।" तत्पश्चात् जेठा जी ने भी अपने वंशजों को कहा, "आप लोग सेवा के रहस्य को नहीं समझ सकते। मैं उनका मेहमान जरूर हूं लेकिन पहले गुरु जी का सेवक हूं। जो गुरु सेवा में आनन्द है वह सांसारिक सुखों में कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता। अब मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं है, परन्तु तुम अब भी इच्छाओं के पीछे भागते फिरते हो। मैंने सब कुछ पा लिया है और इस जात-पात तथा कुल-मर्यादा से मैं परित्यक्त हो गया हूं। मेरे सम्बन्ध में आप को कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है।"

भाई जेठा जी के वंशज यह बात सुन कर अपना-सा मुंह लेकर लाहौर चले गये। भाई जेठा जी की सेवा निष्काम थी। उनके हृदय में नम्रता का वास था और मन हर समय सिमरन में लगा रहता था। उनकी ऐसी सेवा को देख कर गुरु अमरदास जी ने उनको गुरु-गद्दी देने का मन बना लिया था, परन्तु कुछ संगतें भाई रामा जी, जिन का बीबी दानी के साथ विवाह हुआ था, को गुरु-गद्दी का उत्तराधिकारी समझती थीं। भाई रामा जी स्वयं सेवा करते और दूसरों से भी करवाते थे। सिक्ख संगतें यही अनुमान लगाती रहती थीं कि भाई रामा जी तथा भाई जेठा जी में से कौन गुरु-गद्दी का उत्तराधिकारी बनेगा। लोगों के मन की भ्रान्ति को दूर करने के लिये गुरु जी ने भाई रामा जी और भाई जेठा जी को बुला कर कहा, "मुझे दो बढ़िया चबूतरे बना कर दो, जिन के ऊपर बैठ कर मैं सत्संग किया करूं। ये हर प्रकार से पूर्ण होने चाहिएं।"

अगले दिन से ही भाई रामा जी तथा भाई जेठा जी चबूतरे बनाने लग पड़े. परन्तु

गुरु जी संध्याकाल में जाकर चबूतरों का जब निरीक्षण करते, तब उन में वे त्रुटि निकाल कर उनको तोड़ने का आदेश दे देते। यह क्रम कई दिन चलता रहा। आठवें दिन जब उन्होंने चबूतरे बनाए तब गुरु जी भाई रामा जी के पास गए और उनके बनाए हुये चबूतरे को देख कर कहने लगे, "यह मेरी इच्छानुसार नहीं बनाया गया है, इसको फिर से बनाओ।" परन्तु भाई रामा जी ने दोबारा चबूतरा बनाने से इन्कार कर दिया। फिर वे भाई जेठा जी के पास गए तथा उनके द्वारा बनाया हुआ चबूतरा देखकर उन्होंने सिर फेर लिया और कहा कि यह ठीक नहीं बना। भाई जेठा जी, गुरु जी के यह वचन सुनकर हाथ जोड़ कर खड़े हो गये और कहने लगे, "हे परम आत्मा! मेरी बुद्धि सूक्ष्म है, मैं आपके अनुमान से अभी भी अनभिज्ञ हूं, मुझ पर दया-दृष्टि करो ताकि मैं इस चबूतरे को आप की इच्छानुसार बना सकूं।

भाई जेठा जी की यह बात सुन कर गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय बाबा बुड्ढा जी को आदेश दिया कि भाई जेठा जी (रामदास जी) को स्नान करवा कर नए सुन्दर कपड़े पहनाये जाएं। तदुपरान्त उन्होंने रामदास जी को गुरु-गद्दी पर बिठा कर पांच पैसे तथा नारियल रख कर तीन परिक्रमा की और माथा टेका। फिर सारी संगत ने आकर माथा टेका, उन में गुरु जी का पुत्र भाई मोहरी भी शामिल था।



गुरु रामदास चक्क

गुरु अमरदास जी एक नया शहर बसाना चाहते थे। जून सन् 1570 ई: को उन्होंने श्री रामदास जी को अपने साथ लिया और उस स्थान पर पहुंचे, जहां पर वे एक नया शहर बसाना चाहते थे। यह वह स्थान था, जहां पर गुरु नानक देव जी आकर ठहरे थे। इस स्थान के लिये उन्होंने वचन दिया था कि यहां पर एक नया तीर्थ-स्थान स्थित होगा और सिक्खी के प्रचार का केन्द्र बनेगा। गुरु अमरदास जी भी एक बार पहले यहां आये थे। उस समय उनको जंगल में से एक ऐसी बूटी मिली थी जिस से गुरु अंगद देव जी की ऊंगली का पुराना जख्म ठीक हो गया था।

गुरु अमरदास जी ने उस स्थान पर पहुंच कर सुलतानविंड, तुंग, गिलवाली, गुमटाला आदि गांव के चौधरियों को बुलाया और उनके सामने एक नया शहर बसाने का प्रस्ताव रखा। सभी चौधरियों ने इसमें सहमति प्रकट की और गुरु अमरदास जी को इच्छानुसार जमीन देने के लिये सहमत हो गये। गुरु जी ने सात सौ अकबरी रुपये देकर जमीन का पट्टा अपने नाम करवा लिया।

गुरु अमरदास जी श्री रामदास जी को शहर बनाने का आदेश देकर स्वयं वापस गोईंदवाल चले गये। श्री रामदास जी ने सबसे पहले अपने निवास हेतु मकान बनाने आरम्भ किए। इन रिहायशी भवनों को बाद में 'गुरु के महल' कहा जाने लगा। उन रिहायशी भवनों के बिल्कुल पास ही एक बाजार भी बनाया गया जिसको 'गुरु बाज़ार' कहते हैं।

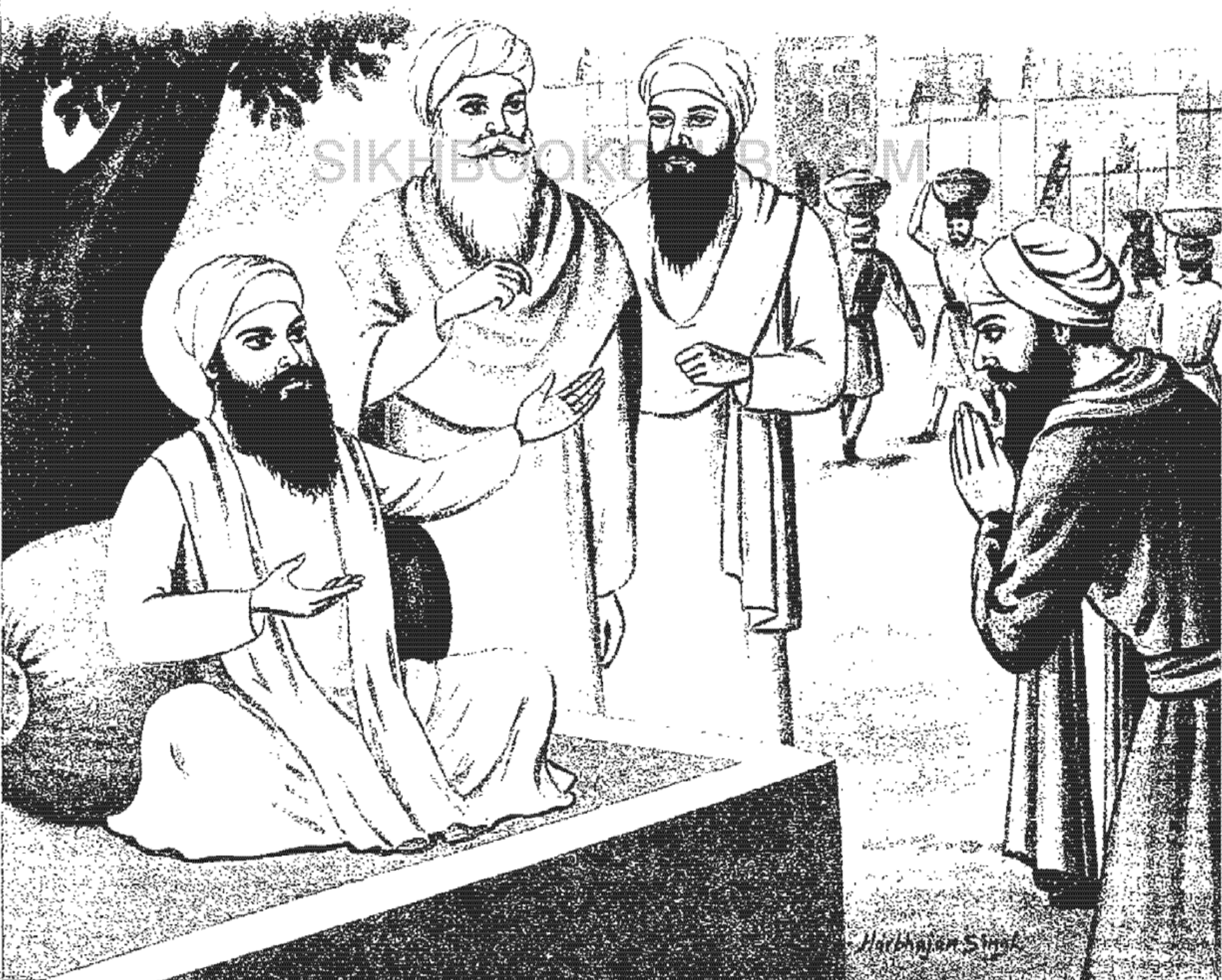
जब रिहायशी भवनों और व्यापारिक केन्द्रों का निर्माण पूर्ण हो गया, तब गुरु रामदास जी को गोईंदवाल बुला लिया गया। यहां जब उन्हें गुरु-गद्दी का दायित्व सौंपा गया तब गुरु अमरदास जी ने उन्हें यह भी आदेश दिया कि वे अपना निवास नवनिर्मित शहर में ही करें और शहर का शेष निर्माण कार्य सम्पूर्ण करें।

गुरु रामदास जी को गद्दी पर बैठने के पश्चात् का कुछ समय सिक्ख संगतों को एकजुट करने में लग गया। बाबा मोहन जी द्वारा विरोध करने के कारण वे कुछ समय एकान्त में रह कर गुरु बाणी पढ़ने-लिखने तथा समझने में विलीन रहे, फिर आप सब सिक्खों को साथ लेकर नवनिर्मित भवनों 'रामदास चक्क' में आकर रहने लगे।

सभी सिक्ख संगतें शहर के निर्माण कार्य में व्यस्त हो गईं। सबसे पहले सन्तोखसर सरोवर की खुदवाई हुई। इस सरोवर के साथ-साथ मजदूरों और कारीगरों ने भी

अपने मकान बना लिये। यहां पर ही लंगर का प्रबन्ध किया गया। यहां पर बिना किसी भेद-भाव से हर व्यक्ति भोजन कर सकता था।

गुरु रामदास जी ने दूर-दूर तक सन्देश भेज दिये कि यहां पर एक अनुपम सुन्दर शहर बसाया जा रहा है। यहां पर प्रत्येक कार्य के लोगों की आवश्यकता है। निवास तथा दुकान के लिये जमीन मुफ्त दी जाएगी और मकान के निर्माण के लिये सहायता भी की जाएगी। गुरु जी का आदेश सुनकर संगतें बहुसंख्या में पहुंच गईं। कुछ समय में एक योजनाबद्ध शहर का निर्माण हो गया। शहर का नाम 'गुरु रामदास चक्क' रखा गया।



अमृत-कुण्ड का प्रकट होना

जब गुरु रामदास जी शहर का निर्माण करवा रहे थे तो उस समय एक अद्‌भुत घटना घटी। जिस अमृत-कुण्ड बारे गुरु नानक देव जी तथा गुरु अमरदास जी संकेत कर गये थे, वह अकस्मात्‌ ही प्रकट हो गया।

इतिहास में लिखा है कि दूनी चन्द नामक खत्री पट्टी कस्बे का रहने वाला एक बड़ा किसान (जमींदार) था। वह बहुत ही अहंकारी था। उसको अपने आप पर बड़ा अभिमान था। उसकी पांच पुत्रियां थीं। वह अपनी बेटियों का अच्छी प्रकार से पालन-पोषण कर रहा था। जो भी वे मांगतीं, वह उन्हें तुरन्त लाकर देता था। एक दिन अभिमान वश उसने अपनी लड़कियों को पूछा कि आपको खाने के लिये कौन देता है। बड़ी चार लड़कियों ने तो नम्रता से कहा, "पिता जी! तुम ही सब कुछ दे रहे हो, तुम ही हमारा सहारा हो।" लेकिन सबसे छोटी लड़की जिस का नाम रजनी था, चुप रही। वह छोटी आयु में लाहौर अपने नाना के घर रही थी और वहां पर उसके नाना-नानी जी गुरु अमरदास जी के सिक्ख थे। उसने अपनी आरम्भिक शिक्षा अपने नानके घर से ली थी और उसको विश्वास हो गया था कि परमात्मा एक है तथा वह सब का अन्नदाता है। जब वह कुछ न बोली तो दूनी चन्द फिर बोला, "रजनी! तूने कोई जवाब नहीं दिया। बतला तुम्हें खाने के लिये कौन देता है।" उस समय रजनी निर्भय होकर बोली, "पिता जी! परमात्मा ही देता है।" रजनी का यह उत्तर सुन कर दूनी चन्द आग-बबुला हो गया तथा उसने यह विचार बना लिया कि वह रजनी को इस मूर्खता का दण्ड देगा। उसने शेष लडकियों के विवाह अच्छे घर में कर दिये परन्तु जब रजनी जवान हुई तो उसके विवाह की उसने कोई चिन्ता न की। रजनी की माता जब इस बारे कहती तब वह यह कह कर टाल देता कि इसके परमात्मा को ही इस की चिन्ता करनी चाहिए। मुझे इसके बारे में सोचने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जब उसकी माता ने बहुत जोर दिया तब उसने उसकी शादी एक अपाहिज कोढ़ी के साथ कर दी। रजनी ने इस का कोई विरोध नहीं किया। वह अपने कोढ़ी पति को ही परमेश्वर समझ कर उसकी सेवा करने लग पड़ी। जब दूनी चन्द ने देखा कि इस घटना का रजनी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब उसने रजनी को घर छोड़ने का आदेश दिया। रजनी को गुरु-घर पर बड़ी श्रद्धा तथा विश्वास था। जब उसे यह पता चला कि गुरु रामदास जी सुलतानविंड के समीप एक शहर का निर्माण कर रहे हैं तब वह अपने पति को एक टोकरी में डाल कर श्री रामदास चक्क पहुंच गई। वह

सारा दिन गुरु घर की सेवा करती तथा भोजन सांझे लंगर में ग्रहण कर लेती और अपने पति को भी भोजन करवा देती थी। एक दिन वह अपने पति को एक बेरी के नीचे छोड़ कर जब सेवा करने गई तो उसके पति ने देखा कि दो कौए रोटी के टुकड़े के लिये लड़ते हुये निकट स्थित छपड़ी में गिर पड़े। जब वे बाहर निकले तब उनके रंग सफेद बगलों की भान्ति हो गये थे। वह कोढ़ी भी रेंगता हुआ छपड़ी तक जा पहुंचा। उसने उस छपड़ी में स्नान किया। जब वह बाहर निकला तो उसका कोढ़ जाता रहा और वह बिल्कुल ठीक हो गया। वह फिर दोबारा बेरी के नीचे आकर बैठ गया। जब रजनी लंगर में से भोजन लेकर आई तब उसने देखा कि बेरी के नीचे एक सुन्दर नौजवान बैठा था। वह उसे पहचान न सकी। उसके पति ने अनेक बार कहा कि वह उसका पति ही है परन्तु वह न मानी और उसको साथ लेकर गुरु रामदास जी के पास आ गई। गुरु रामदास जी ने उसे भरोसा दिया कि वह ही उसका पति है।

फिर उन्होंने बाबा बुड्ढा जी को कहा कि जिस अमृत-कुंड के बारे गुरु अमरदास जी बता गये थे, वह यही कुंड है। यहां पर हमें अमृत-सरोवर बनाना चाहिए।



अमृतसर सरोवर

अगले दिन ही गुरु रामदास जी ने कड़ाह प्रसाद की देग तैयार करवाई। बाबा बुड्ढा जी, भाई गुरदास जी तथा अन्य गुरमुख सिक्खों को साथ लेकर अमृत-कुण्ड के पास पहुंच गये। बाबा बुड्ढा जी को उन्होंने वाहिगुरु जी का नाम लेकर टक लगाने के लिये कहा। उसके पश्चात् सारी संगत को कड़ाह-प्रसाद देकर निरन्तर सरोवर की खुदाई आरम्भ कर दी। जब इलाके के लोगों को पता चला कि अमृत-कुण्ड में एक कोढ़ी स्नान करने पर ठीक हो गया है तब लोग बड़ी श्रद्धा से कहियों, टोकरियों आदि के साथ बहुसंख्या में पहुंच गये। अनेक रोगी अमृत-कुण्ड में स्नान करके निरोग हो रहे थे तथा फिर गुरु जी के ही बन कर सेवा में जुट जाते थे।

लेकिन गुरु का लंगर चलाने के लिये, ईंटें तैयार करने के लिये तथा मजदूरों को मजदूरी देने के लिये धन की आवश्यकता थी, इसलिये गुरु जी ने अपने गुरमुखों को दूर-दूर तक कार-भेंट लेने के लिये भेजा। कुछ समय में ही अत्यधिक धन राशि इकट्ठी हो गई और सरोवर का निर्माण कार्य पूरे जोर-शोर से चलता रहा। रजनी और उसका पति भी कार सेवा में भाग ले रहे थे। दूनी चन्द को जब यह पता चला कि रजनी का पति बिल्कुल स्वस्थ होकर नवयुवक बन गया है तथा गुरु रामदास जी की उन पर अपार कृपा है तो वह भी गुरु जी के दर्शनों को आया।

गुरु जी का लंगर ग्रहण करके उसका सारा अभिमान जाता रहा। उसको यह ज्ञान हो गया कि परमात्मा प्रत्येक को देने वाला है। भले ही वह बहुत अमीर था लेकिन इतनी बड़ी संगत को एक दिन भी भोजन खिलाने में सक्षम नहीं था। उसने गुरु जी से क्षमा मांगी। उसने अपनी बेटी और दामाद को घर वापस ले जाने की आज्ञा मांगी, लेकिन रजनी ने अपने पिता के साथ जाना अस्वीकार कर दिया, परन्तु उसने यह वचन जरूर दिया कि जब सरोवर का निर्माण सम्पूर्ण हो जाएगा, तो वह अपने पिता के घर अवश्य आएगी। दूनी चन्द बहुत प्रसन्न हुआ तथा कुछ दिनों के पश्चात् वह भी पट्टी को छोड़ कर अपने कुछ साथियों के साथ सेवा में उपस्थित हो गया।

कुछ समय में ही सरोवर तैयार हो गया। इस में पानी भरने से पहले इसके मध्य में एक ऊंचा चबूतरा बनाया गया जिस तक पहुंचने के लिये रास्ता छोड़ दिया गया था। इस चबूतरे पर ही प्रातः व सायं दोनों समय कीर्तन होता था। सरोवर के चारों ओर कुएं बनाये गये थे तथा कुओं का पानी सरोवर में गिरता था।

जो भी किसान नए बैलों की जोड़ी खरीदता था या नये बछड़े को जोत में लगाता था तो वह इन कुओं पर पहली बार यथायोग्य सेवा करता था। इस प्रकार ये चारों कुएं दिन-रात चलते रहते थे। कुछ महीनों में ही सरोवर पूर्णतया भर गया।

अब यह चबूतरा एक अलौकिक तीर्थ बन गया था। चबूतरे वाले स्थान से प्रतिदिन प्रातःकाल कीर्तन के स्वर निकलते थे जोकि वेदों के स्वर को भी मात कर देते थे। माया हर एक के पांव चूमती थी। अब लोग गंगा स्नान को भूल गये थे। समस्त शहर वासी और बाहर के लोग यहां आकर सरोवर में स्नान करते और धन्य गुरु रामदास जी कह कर कीर्तन सुनने के लिये चले जाते थे। अमृत-सरोवर में स्नान करने से लोगों के दुःख दूर हो जाते थे तथा सभी ओर खुशहाली नजर आती थी।

शहर के लोगों को कोई जजिया या टैक्स नहीं देना पड़ता था, क्योंकि यह उनका अपना शहर था। अमृत-सरोवर बनने के पश्चात् नगर का नाम अमृतसर पड़ गया था।



लाहौर यात्रा

अमृतसर की रौनकें दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थीं। गुरु जी नित्य प्रति पहर-रात गई जागते, फिर स्नान करके प्रभु-सिमरन में लग जाते थे। फिर प्रातः ही उठ कर उस स्थान पर पहुंच जाते जहां पर आजकल हरिमन्दिर साहिब बना हुआ है, इस स्थान पर गुरु जी दीवान लगाते तथा कीर्तन करने वाले कीर्तन करते थे। कीर्तन की समाप्ति पर लंगर तैयार हो जाता था। सब संगतें लंगर में बैठ कर प्रसाद लेती थीं। गुरु जी भी लंगर में बैठ कर प्रसाद ग्रहण करते थे। इस के पश्चात् गुरु जी आराम करने के लिये 'गुरु के महल' पहुंच जाते थे। सायं फिर स्नान करके संगतों को दर्शन देते थे। सायं गुरु जी स्वयं कथा करते और सिक्खों को सच्चा मार्ग प्रदर्शित करते थे। गुरु जी फरमाते हैं कि हमें किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जो व्यक्ति प्रभु को अपना सहारा समझ लेता है, उसके सभी भय, दुःख और चिन्ताएं दूर हो जाती हैं। शाम के दीवान के पश्चात् गुरु जी कुछ समय के लिये सैर को चले जाते थे। जब अंधेरा होने लगता तो सरोवर में पहुंच कर सोदर की चौकी लगवाते तथा इस के पश्चात् कीर्तन आरम्भ हो जाता था। उससे सरोवर के निर्मल जल में राग की तरंगें उठती थीं। कीर्तन की समाप्ति के पश्चात् फिर लंगर में प्रसाद लेते और जब सब संगतें अपने घरों को चली जातीं तब गुरु जी कुछ गुरमुखों के साथ नई आई संगतों के विश्राम का प्रबन्ध स्वयं अपने हाथों से करते थे।

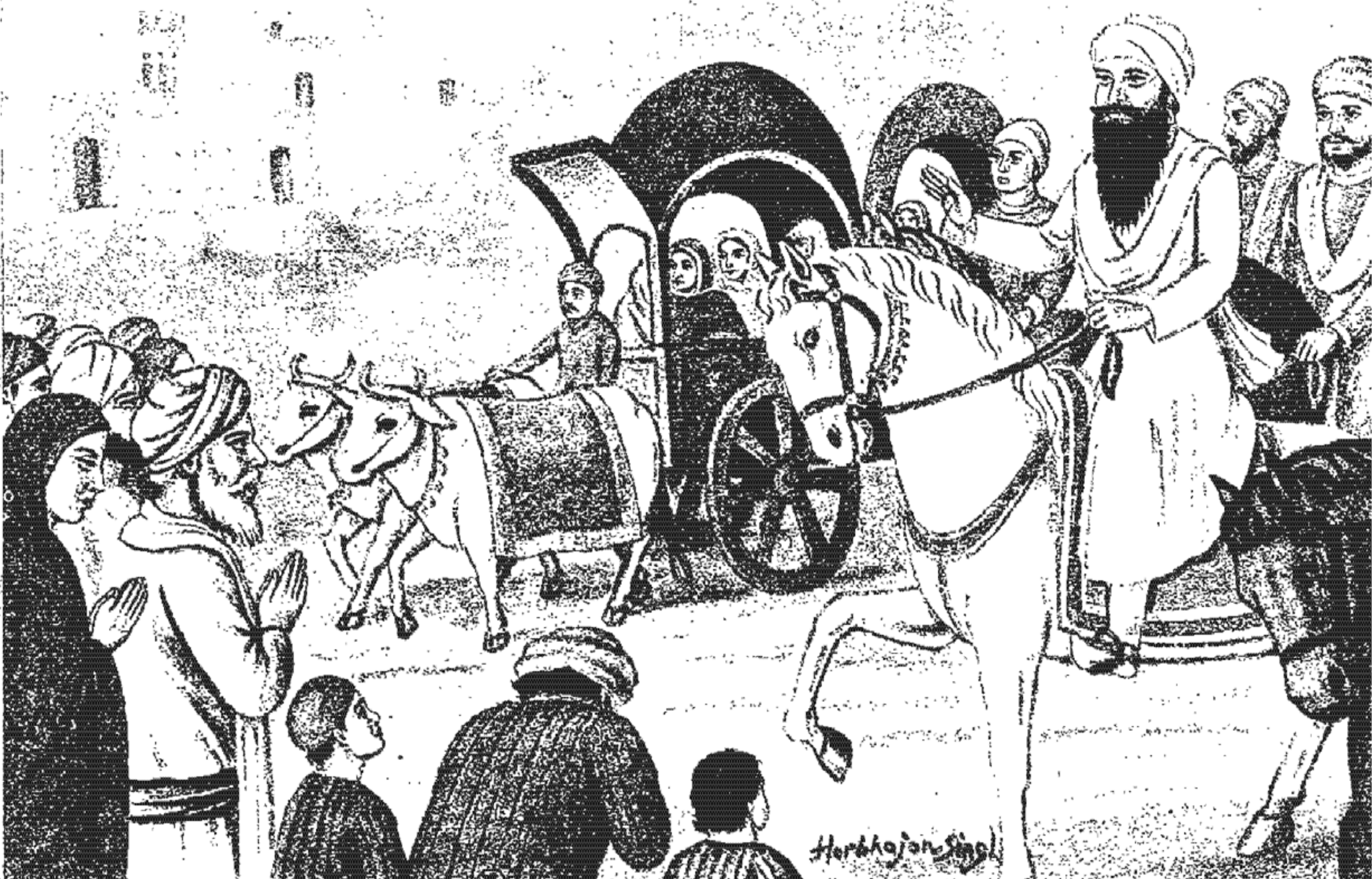
उन दिनों में लाहौर से एक जत्था आया जिसमें भाई सिहारी मल जी भी थे। वे वंश में से गुरु जी के बड़े भाई लगते थे। भाई सिहारी मल जी ने गुरु जी से प्रार्थना की कि लाहौर की संगतें आप के दर्शनों के लिये बड़ी उत्सुक हैं। आप को अपनी जन्म भूमि पर जरूर जाना चाहिये।

गुरु जी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और लाहौर चले गये। जब वे लाहौर पहुंचे तो बड़ी संख्या में लाहौर निवासी उनको लेने आये। उन को यह गर्व था कि गुरु रामदास जी की जन्म-भूमि लाहौर थी। वे यह भी समझते थे कि एक अनाथ से किस प्रकार वे एक सच्चे पातशाह बन गये थे। यह सब कुछ उनके परिश्रम का ही फल था।

गुरु रामदास जी सबसे पहले अपने निजी मकान में गये। उन्होंने अपने मकान को एक धर्मशाला में बदल दिया। लोगों की सुविधा के लिये उन्होंने एक कुआं भी वहां बनवाया। अपने घर को धर्मशाला बना कर वे भाई सिहारी मल के घर जाकर

ठहर गए। भाई सिहारी मल जी का घर बहुत बड़ा था। यहां पर सिक्ख-संगतों की भीड़ लगी रहती थी। गुरु जी ने संगतों को मर्यादा में रहने लिये कहा, जिस कारण संगतें सायं और प्रातः इकट्ठी होती थीं। अमृतसर की भान्ति यहां भी गुरु जी का लंगर चल पड़ा तथा प्रातः व सायं कीर्तन का संचार होने लगा। सायं गुरु जी कथा करते तथा लाहौर की संगतों को निहाल करते थे।

दीर्घ समय तक वहां रहने के पश्चात् वे वापस अमृतसर आ गये।



बादशाह अकबर का अमृतसर आगमन

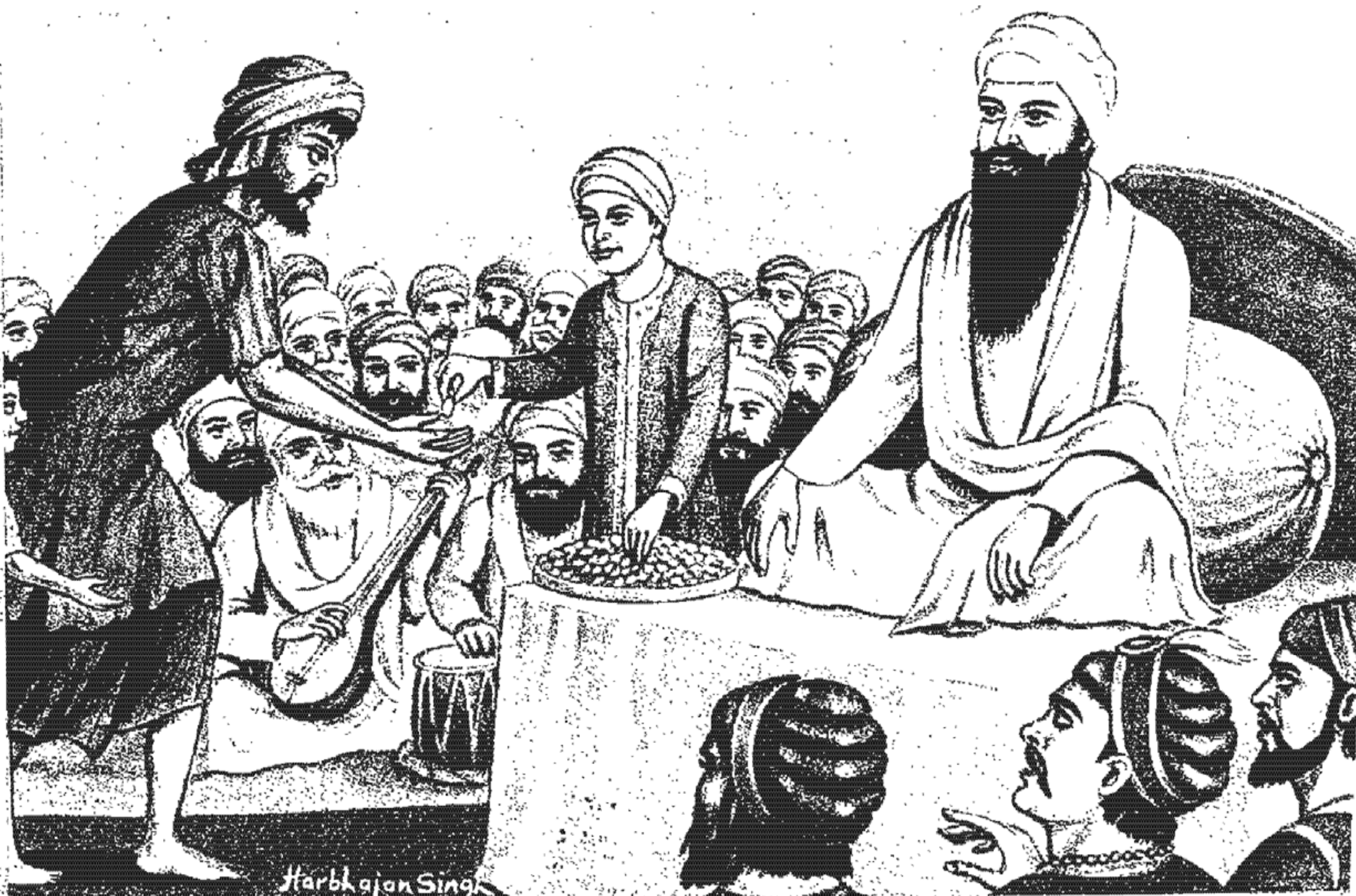
बादशाह अकबर ने एक नया धर्म चलाया था, जिस का नाम उसने 'दीन-ए-इलाही' रखा था। उसके दरबार में धर्म-चर्चा चली कि कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो बिल्कुल भगवान का रूप हो। कई सन्तों, पीरों, फकीरों के नाम लिये गये परन्तु अकबर बादशाह की सन्तुष्टि न हुई। अकबर बादशाह उन समस्त फकीरों को परख चुका था। उनमें से कुछ माया के भूखे थे, किसी को पद की लालसा थी और कोई अपनी महिमा कराने की इच्छा रखता था।

दरबार में एक ऐसा व्यक्ति भी था जो गुरु रामदास जी को जानता था और उसने गुरु जी के दर्शन भी किये थे। उसने कहा, "गुरु रामदास जी एक ऐसे महान व्यक्तित्व हैं जिन को सांसारिक पदार्थों की कोई लालसा नहीं है। जो कुछ भी उनको भेंट होता है उसके साथ वे सांझा लंगर चलाते हैं। यदि कोई उन्हें अमूल्य वस्तु उपहार के रूप में भेंट करता है तो वे उसी समय उस वस्तु को जरूरतमंद लोगों में बांट देते हैं। एक दिन एक स्त्री एक बहुमूल्य हार लेकर आई तथा उसने वह हार गुरु जी को अर्पित कर दिया। गुरु जी ने वह हार एक निर्धन को दे दिया। स्त्री बहुत उदास हुई। वह बड़ी श्रद्धा से हार को लेकर आई थी कि गुरु जी जब इस हार को अपने गले में पहनेंगे तब वे कितने सुन्दर लगेंगे। गुरु जी उस औरत की उदासी को समझ गये। उन्होंने उसी समय उस स्त्री को कहा, "माता जी! आप चिन्ता न करो, आपका बहुमूल्य हार मेरे पास पहुंच गया है। यह अब एक जरूरतमंद की सहायता करेगा। यदि हम किसी के काम आ सकें तब इसके अतिरिक्त और कोई बड़ी दात नहीं है। आप को प्रसन्नता होनी चाहिये कि तुम्हारा हार किसी के काम आ गया है। स्त्री गुरु जी के वचन सुन कर बहुत प्रसन्न हुई।

अकबर को फिर यह भी स्मरण कराया गया कि गुरु रामदास जी वही हैं जो सनातन धर्म वालों की शिकायत का निपटारा कराने के लिये उनको लाहौर में मिले थे। उन्होंने गुरु अमरदास जी के लंगर से प्रसाद भी खाया था और गुरु अमरदास जी के दर्शन भी किये थे। बादशाह ने उसी समय मन बना लिया कि वह गुरु रामदास जी के दर्शन करने के लिये अमृतसर जाएगा।

जब गुरु रामदास जी लाहौर से अमृतसर वापस आये तब अकबर काबुल की जंग पर गया हुआ था। काबुल की जंग पर विजय प्राप्त करके जब वह वापस आया तब उसने अमृतसर जाने के लिये अपने दरबारियों को बताया। कुछ दिनों में ही वह

अमृतसर पहुंच गया। जब वह गुरु जी के दरबार में उपस्थित हुआ तो गुरु साहिब के तेजस्वी चेहरे को देखकर वह बहुत प्रसन्न तथा प्रभावित हुआ। उसने गुरु जी के आगे एक सौ एक मोहरें भेंट करके नमस्कार किया। गुरु साहिब जी के छोटे साहिबज़ादे (गुरु) अर्जुन देव जी उनके पास बैठे हुये थे। गुरु जी ने अपने पुत्र को आदेश दिया कि वह उन मोहरों को निर्धनों में बांट दे। (गुरु) अर्जुन देव जी ने सभी मोहरें जरूरतमंदों को बांट दीं। यह देखकर बादशाह अकबर अत्यंत चकित हुआ। फिर अकबर ने बारह गांव की जमीन गुरु जी के लंगर के नाम लगवानी चाही परन्तु गुरु साहिब ने कहा, "फकीरों का जागीरों के साथ क्या सम्बन्ध है? ये जागीरें ही हैं जो मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या व लड़ाई-झगड़ा आदि उत्पन्न करती हैं।" अकबर को अब पूरा विश्वास हो गया कि संसार में एक ऐसा व्यक्ति भी है जो भगवान का ही रूप है।



बाबा श्रीचन्द जी से मिलन

बाबा श्रीचन्द जी गुरु नानक देव जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। आप ने उदासी मत्त धारण कर लिया और जती-सती रह कर उन्होंने सिक्ख धर्म का प्रचार किया था। वे महान शक्तियों के स्वामी थे। उन्होंने कई अहंकारियों के शीश झुकाए थे। गुरु अंगद देव जी को गुरु-गद्दी देने पर भले ही उन्होंने विरोध किया था परन्तु बाद में प्रभु-भक्ति में इतनी लगन लग गई कि उन्होंने इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया था। उन्होंने गुरु रामदास जी की भी बड़ी महिमा सुनी थी, लेकिन वे उनको मिलने के लिये नहीं आये थे।

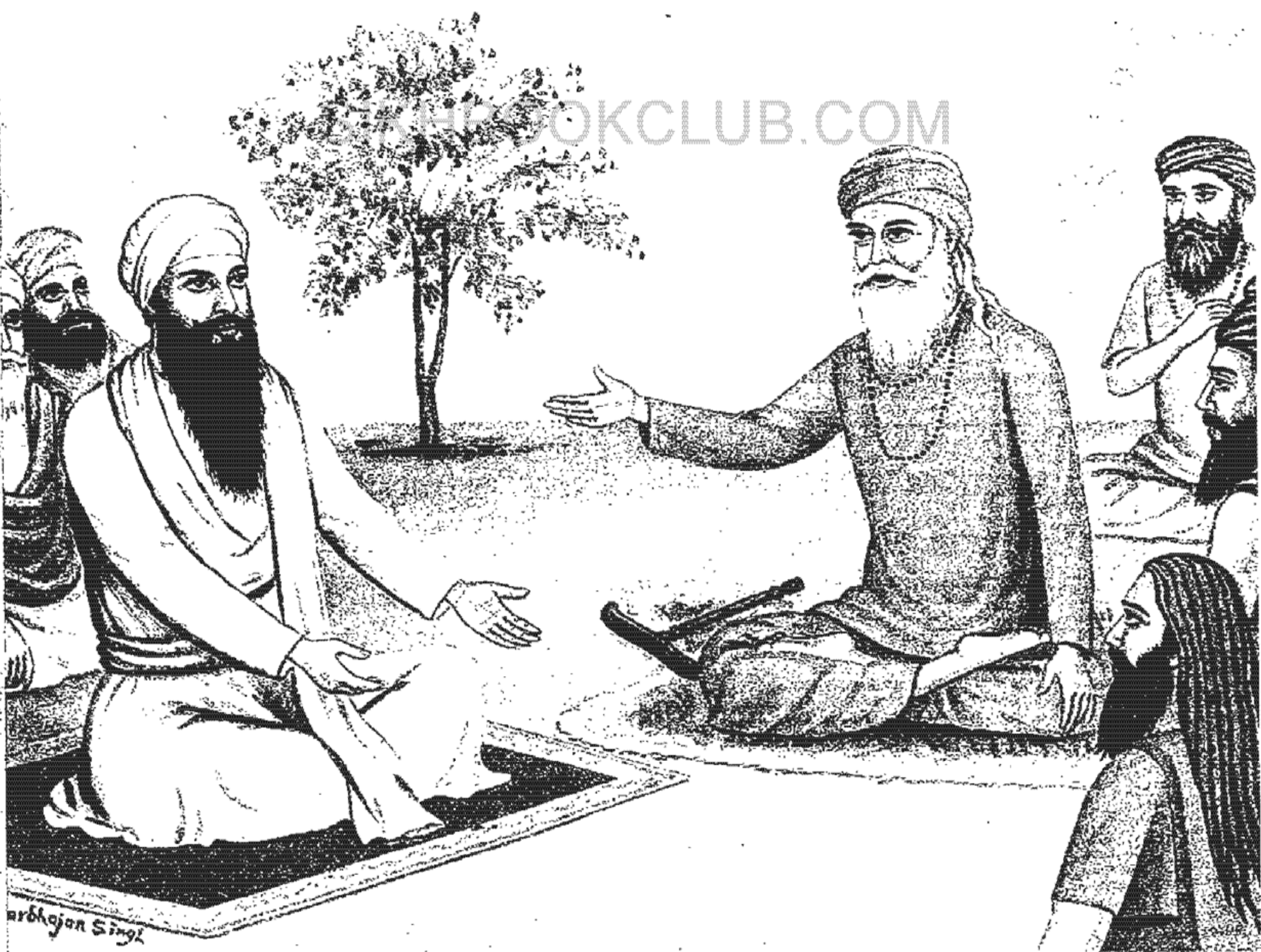
परन्तु जब उन्होंने अमृतसर शहर के आबाद होने, सुन्दर अमृत-सरोवर का निर्माण तथा गुरु रामदास जी की अपार महिमा को सुना तब उनसे रहा न गया और वे स्वयं गुरु जी को मिलने के लिये अमृतसर आये। उस समय उनकी आयु लगभग 90 वर्ष की थी परन्तु भगवान के नाम की कमाई होने के कारण उनका शरीर बहुत ही हृष्ट-पुष्ट तथा फुर्तीला था। वे साधुओं वाला पहरावा पहनते थे और सिर पर भगवें रंग की दस्तार सजाते थे। उनमें योगियों या तपस्वियों वाली कोई बात नहीं थी। उस समय इतनी आयु होने पर भी दाढ़ी पूर्ण तौर पर सफेद नहीं हुई थी। जब वे अपने शिष्यों के साथ गुरु रामदास जी के दरबार में उपस्थित हुये तब गुरु जी उनको मिलने के लिये उठ कर आगे गये।

गुरु पुत्र होने के कारण गुरु जी ने झुक कर उन्हें नमस्कार किया तथा कुशलक्षेम पूछा। फिर गुरु जी उनको साथ लेकर दरबार में आ गये और उन्हें अपने पास ही बिठा लिया। बाबा श्रीचन्द जी गुरु जी के चेहरे का नूर काफी देर तक देखते रहे। उनके मुंह पर उनको वही नूर देखने को मिला जो वे अपने पिता गुरु नानक देव जी के चेहरे पर देखते थे। गुरु जी के नूरानी व्यक्तित्व ने उन्हें मोह लिया। फिर गुरु जी के दिव्य चेहरे की ओर देखकर वे बोले, "इतनी सुन्दर दाढ़ी कैसे बढ़ा ली है।"

गुरु रामदास जी भी बाबा श्रीचन्द जी की ओर बड़े ध्यान से देख रहे थे। वे इस बात से बड़े प्रसन्न थे कि जब से बाबा जी वहां आये हुये थे उनके चेहरे पर गुलाब के फूल की भान्ति मुस्कराहट खिली हुई थी। गुरु जी विनम्र-स्वर में बोले, "यह दाढ़ी आप जैसे महापुरुषों के चरणों को पोंछने के लिये बढ़ाई गई है।" यह बात सुन कर बाबा श्रीचन्द जी खिलखिला कर हंस पड़े और कहने लगे, "धन्य हो तुम और धन्य है तुम्हारी विनम्रता। गुरु अंगद देव जी ने तो सेवा करके गुरु-गद्दी प्राप्त की थी लेकिन आप ने नम्रता तथा प्रेम से इसको प्राप्त किया है। मैंने आपके बारे में बहुत

कुछ सुना था, लेकिन अब मैंने आंखों से भी देख लिया है। आप ने अथाह परिश्रम करके केवल गुरु-गद्दी ही नहीं पाई, अपितु सारी सृष्टि को ही मोह लिया है। आपकी महिमा को शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। आपके परिश्रम से निर्मित शहर देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। इस सरोवर की शोभा निराली है। मैं तो यही आशीर्वाद दूंगा कि जो कोई भी पापी इस सरोवर में स्नान करेगा, उसके सभी पाप निवृत हो जाएंगे और सदा के लिये पापों से मुक्त हो जाएगा।

जब बाबा श्रीचन्द जी जाने लगे तब गुरु जी ने उनको बड़े सत्कार से विदा किया। उनको एक घोड़ा और पांच सौ रुपए विदाई के समय दिए।



भाई सोमा शाह

श्री अमृतसर की महिमा दूर-दूर तक फैल गई जो भी व्यक्ति एक बार अमृतसर आ जाता, वह वहीं का होकर रह जाता। वहां उसको इस प्रकार अनुभव होता जैसे वह स्वर्ग में आ गया हो। अमृतसर में न कोई टैक्स और न ही कोई जजिया देना पड़ता था। एक और विशेष बात यह थी कि अमृतसर में न कोई पुलिस थी, न ही कोई थाना था। शहर के अधिपति गुरु रामदास जी थे, जो शान्ति के प्रतीक थे। वे किसी को कोई दंड नहीं देते थे बल्कि दया प्रदान करते थे।

हरिदास नामक एक कवि लिखता है कि जब अमृतसर और स्वर्ग को तकड़ी के दोनों पलड़ों में रखकर तोला गया तो अमृतसर भारी होने के कारण नीचे ही धरती पर रह गया तथा स्वर्ग हल्का होने के कारण ऊपर आकाश में चला गया।

अमृतसर बैकुंठ को तोलिओ हरि हरि दास।
गोरो हुतो धर रहिओ, होरो चढ़िओ अकाश।

एक समय की बात है कि सोमा शाह नामक व्यापारी स्वर्ग रूपी अमृतसर को देखने के लिये जेहलम से चल कर आया। जेहलम में उसका अच्छा कारोबार था, लेकिन जब उसने गुरु जी के दर्शन किये तथा शहर निवासियों का मेल-मिलाप देखा तो उसका शहर छोड़ने को दिल ही नहीं किया। उसने अपने परिवार को भी अमृतसर ही बुला लिया। उसने अपने जीवन निर्वाह के लिये सरोवर के समीप दुकान खोल ली। कुछ समय में ही उसकी दुकान खूब चलने लगी परन्तु वह ज्यादा लालच नहीं करता था। जब गुजारे योग्य पैसे कमा लेता तब वह दुकान बन्द करके गुरु-घर की सेवा में लग जाता था।

गुरु रामदास जी उसके सेवा-भाव को देखते रहते थे। एक दिन गुरु जी उसकी दुकान पर गये और कहा, "सोमे शाह आज आप ने कितना कमाया है?" सोमे शाह ने उसी समय झुक कर गुरु जी को नमस्कार किया और जो भी कमाया था वह गुरु जी को भेंट कर दिया। गुरु जी ने वह सारी राशि मजदूरों में बांट दी। इस प्रकार गुरु जी पांच दिन तक उसके पास जाते रहे और उसकी सारी कमाई लेकर मजदूरों में बांट देते थे, लेकिन सोमे शाह ने किसी प्रकार का क्षोभ नहीं किया।

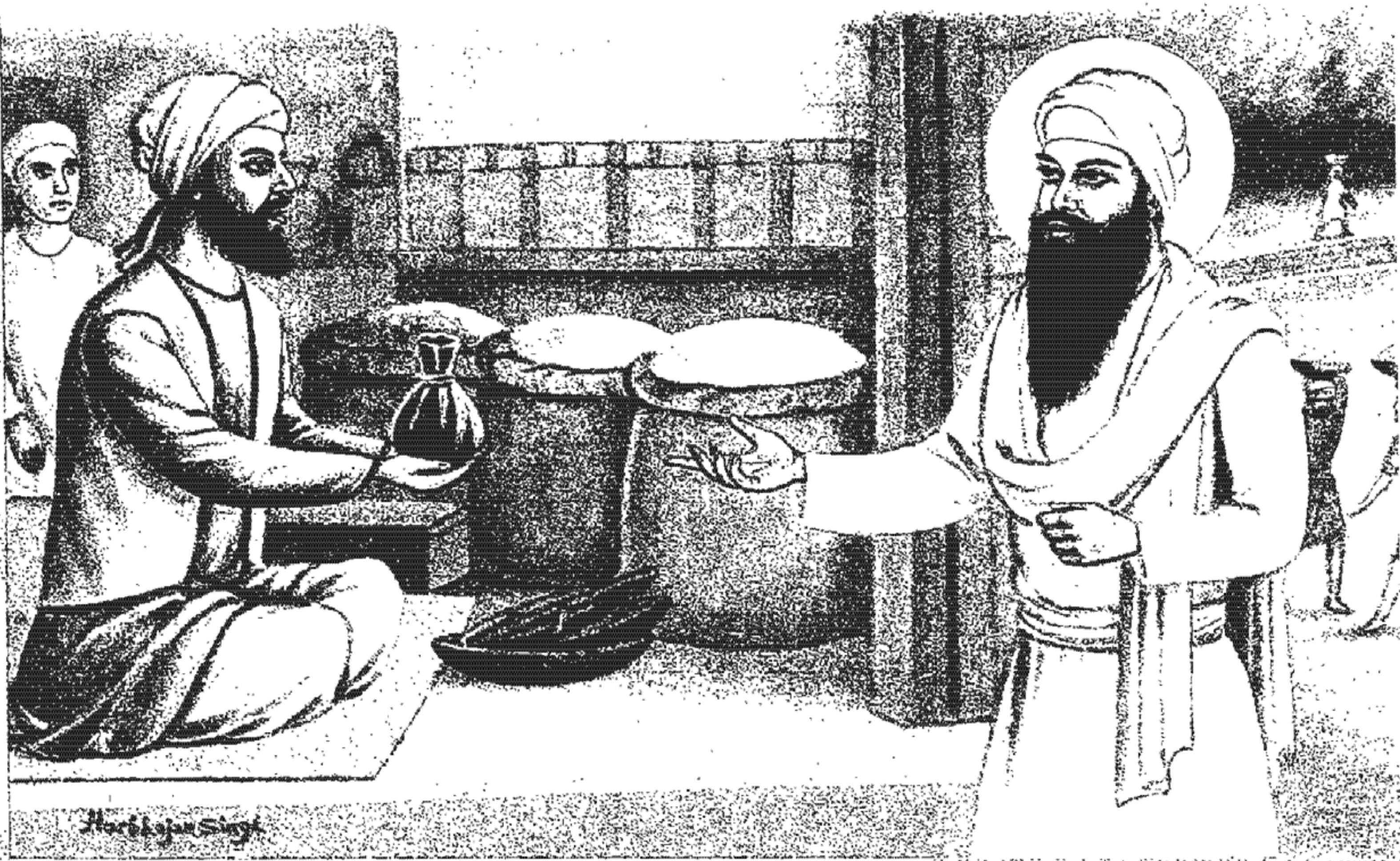
वह इस बात से बड़ा प्रसन्न था कि उसकी नेक कमाई उचित तौर पर खर्च हो रही है। जब छठे दिन गुरु जी उसके पास गए तो उसने तुरन्त ही बिना कहे अपनी

सारी कमाई गुरु जी को सौंप दी। भाई सोमे शाह के इस सन्तोष को देख कर गुरु जी बहुत प्रसन्न हुये और उसको वरदान देते हुए यह शब्द कहे :-

सोमा शाह, बेपरवाह, गुरु का शाह।

गुरु जी के वरदान से उसकी दुकान में इतनी वृद्धि हुई कि सोमे शाह अमृतसर में एक बड़ा शाह बन गया। उसका पुत्र राम शाह भी गुरु जी के प्रसिद्ध तथा प्रमुख सिक्खों में गिना जाता था। गुरु अर्जुन देव जी ने राम शाह को मुलतान का प्रचारक नियुक्त किया था। यहां पर उन्होंने सिक्खी का बहुत प्रचार किया। तत्पश्चात् राम शाह का पोत्र मेहर शाह गुरु गोबिंद सिंघ जी का एक प्रसिद्ध सिक्ख हुआ।

गुरु गोबिंद सिंघ जी ने भले ही मसंदों की प्रथा बंद कर दी थी परन्तु मेहर शाह, जो बाद में अमृत ग्रहण करके मेहर सिंघ बन गया, मुलतान के इलाके से उगाही करके गुरु जी के पास पहुंचता था। गुरु जी ने उसकी नेक कमाई पर प्रसन्न होकर उसको 'बखशंद फरजंद' की संज्ञा दी।



मुलतान का राजा

अमृत सरोवर की महिमा अपरम्पार थी। जो भी यह सुनता कि अमृत सरोवर में स्नान करने से समस्त दुःख दूर हो जाते हैं, वही अमृतसर की ओर चल पड़ता। लोग गंगा स्नान का परित्याग करते जा रहे थे। गवाल कवि लिखता है, "सुरपुरी में जो अमृत है, वह बड़ी कठिनाई से मिलता है, परन्तु अमृत सरोवर में यह अमृत हर समय मिलता रहता है। वे कहते हैं कि स्वर्गपुरी का अमृत पीकर अमर हो जाते हैं, वह अमृत तो मौत के पश्चात् ही मिलता है। पता नहीं मिलता भी है अथवा नहीं, परन्तु इस अमृत में ऐसे गुण हैं कि इस को पीकर जीवन को मुक्ति मिल जाती है।" इस प्रकार भाई नंद लाल जी ने भी कहा है, "कि गंगा बेचारी इस अमृत का क्या सामना कर सकती है, यहां पर तो अठसठ तीर्थ ही इसके सेवक लगते हैं।"

कई राजे-महाराजे भी अमृत सरोवर की प्रशंसा सुन कर स्नान के लिये आते थे। कहा जाता है कि एक बार मुलतान का राजा भी अमृतसर में स्नान करने के लिये आया। उसको ऐसा रोग था कि कोई भी वैद्य उसका उपचार नहीं कर सका था। जब समस्त हकीमों ने उसे इलाज से इन्कार कर दिया तब उसने अपने दरबारियों को पूछा कि कोई ऐसा महापुरुष भी है जो इस का उपचार कर सके? उन दरबारियों में से एक दरबारी को अमृतसर के सरोवर का पता था। उसने कहा, "यदि अमृतसर में जाकर अमृत सरोवर में स्नान किया जाए तो सारे रोग दूर हो जाएंगे। आप उस सरोवर में स्नान करो। हो सकता है आप का रोग भी निवृत्त हो जाए।

राजा ने उसी समय अमृतसर जाने की तैयारी कर ली। उस ने अपनी रानियों को भी साथ लिया और रथों पर सवार होकर अमृतसर आ गये। वे अमृतसर नगर को देख कर चकित हो गये। थोड़े समय में निर्मित हुआ यह शहर हर प्रकार से परिपूर्ण था। प्रत्येक वस्तु का खुला तथा पृथक बाजार था। लोग बहुत प्रसन्न थे। कोई लड़ाई अथवा झगड़ा नहीं था। जब वह शहर के मध्य में अमृत सरोवर पर पहुंचा तो किनारे तक भरे सरोवर के निर्मल जल को देख कर उसे आत्मिक शान्ति प्राप्त हुई। उस समय गुरु जी की वाणी का कीर्तन हो रहा था तथा प्रत्येक ओर आनन्दमयी तथा शान्तमयी दृश्य था।

उसके सेवकों ने उसे सरोवर में स्नान कराया। स्नान करने से उसकी आत्मा आनन्दातिरेक हो गई। उसने देखा कि उसका शरीर हल्का-फुल्का हो गया है। उसने अपनी रानियों और सेवकों को कहा, "मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं, अब मुझे

कोई रोग नहीं है।" उसकी रानियों और सेवकों को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उन्होंने भी सरोवर में स्नान किया।

कुछ समय आराम करने के पश्चात् राजा और रानियां गुरु जी के दर्शनों को गये। उसने गुरु जी के आगे उपहार रखकर माथा टेका। गुरु जी की जब उस पर दृष्टि पड़ी तो वह गुलाब के फूल की भान्ति खिल गया। उसने गुरु जी का धन्यवाद किया जिन्होंने लोगों के कल्याण के लिये ऐसा सरोवर तैयार किया था। राजा गुरु जी से इतना प्रभावित हुआ कि वह कई दिन अमृतसर रहा तथा नियम से कीर्तन सुनता तथा स्नान करता था।



बाबा पृथी चन्द जी

बाबा पृथी चन्द गुरु रामदास जी का ज्येष्ठ साहिबजादा था। उसका जन्म सन् 1557 ईः को गोईंदवाल में हुआ था। वह छोटी आयु में ही बड़े चंचल, ईर्ष्यालु तथा कुटिल स्वभाव वाला था। भाई गुरदास जी ने अपनी वाणी में उसके लिये 'मीणा' शब्द का प्रयोग किया है। जोकि उनके व्यक्तित्व को समझने के लिये बहुत ही उचित शब्द है। पंजाबी में 'मीणा' उस व्यक्ति को कहते हैं जो देखने में बहुत भोला-भाला तथा सीधा-सादा लगे, परन्तु अंदर से बड़ा धोखेबाज तथा कपटी हो। गुरु रामदास जी भी उसे समझाया करते थे, पर उस पर कोई प्रभाव नहीं होता था। जब गुरु जी अमृतसर तथा सरोवर का निर्माण करवा रहे थे तब वह संगत की ओर से आई कार-भेंट में हेरा-फेरी कर लेता था। बाद में वह सारे कार्य का प्रबन्धक बन गया तथा अपनी इच्छा से ही धन खर्च करता था और शेष धन छुपा कर रख लेता था। उसका गुरु जी, माता भानी तथा भाइयों के साथ कोई स्नेह नहीं था। गुरु रामदास जी अपने छोटे साहिबजादे (गुरु) अर्जुन देव जी के साथ बहुत प्यार करते थे, इसलिये वह (गुरु) अर्जुन देव जी का भी बहुत विरोधी हो गया था।

वह चाहता था कि किसी भी ढंग से गुरु-गद्दी प्राप्त की जाए। वह इतना अहंकारी हो गया था कि वह समझता था कि गुरयाई को भी वही चला रहा था। वह साधारणतया कहता था कि उनके पिता जी नाम के ही गुरु बने हुये हैं। सारा कामकाज तो वही चला रहा है। उसको कई बार यह संकेत मिलते थे कि गुरु रामदास जी गुरु-गद्दी (गुरु) अर्जुन देव जी को देंगे, इसलिये उसने सब सेवकों को अन्दरखाते अपने साथ कर लिया तथा उनको कहा कि कार-धन सारा वह उसे ही लाकर दें।

जब गुरु जी ने उसे लाहौर जाने के लिये कहा, तब उसने जाने से इन्कार कर दिया कि मेरे पास समय नहीं है। इतने बड़े कारोबार को कौन चलायेगा? जब गुरु जी के दूसरे साहिबजादे बाबा महां देव ने भी लाहौर जाने से इन्कार कर दिया तब (गुरु) अर्जुन देव जी को विवाह में सम्मिलित होने के लिये जाना पड़ा। बाबा पृथी चन्द इस बात पर प्रसन्न था कि (गुरु) अर्जुन देव जी के दूर रहने से उसको गुरु-गद्दी प्राप्त करनी सरल हो जाएगी। जब (गुरु) अर्जुन देव जी को लाहौर में काफी समय लग गया तब उन्होंने गुरु जी को मिलने के लिये पत्र लिखे, परन्तु बाबा पृथी चन्द इन पत्रों को छुपा लेता था, ताकि (गुरु) अर्जुन देव जी अमृतसर न आ सकें।

अन्त में उसका यह भेद खुल गया और गुरु रामदास जी ने (गुरु) अर्जुन देव जी को अमृतसर बुला कर गुरु-गद्दी सौंप दी। बाबा पृथी चन्द ने इस का बहुत विरोध किया। जब गुरु रामदास जी गोईंदवाल जाकर ज्योति-ज्योत समा गये, तब उस ने अर्जुन देव जी पर यह दोष लगा दिया कि उन्होंने गुरु रामदास जी को ज़हर देकर मार दिया है, पर उसकी किसी ने भी नहीं सुनी।

वह गुरु अर्जुन देव जी को बाद में भी तंग करता रहा। मसंदों से दसवंध (कार-धन) जब्री प्राप्त कर लेता था। जब (गुरु) हरिगोबिंद साहिब का जन्म हुआ तब उसने उन्हें भी मारने के कई यत्न किये। एक बार उसने खाने वाली वस्तु में ज़हर देकर मारने का प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हुआ। फिर उसने (गुरु) हरिगोबिंद साहिब को एक मित्र द्वारा ज़हर देने का कार्यक्रम बनाया, परन्तु (गुरु) हरिगोबिंद साहिब उस के प्रत्येक प्रयत्न से बच जाते थे।



बाबा महां देव जी

गुरु रामदास जी के दूसरे साहिबजादे का नाम बाबा महां देव जी था। आप बचपन से ही बड़े मस्त स्वभाव के थे। भले ही गुरु साहिब जी ने उनको हर प्रकार की विद्या दिलाई परन्तु वे सांसारिक बन्धनों से सदा दूर रहते थे। दुनिया से दूर होने के कारण उनका किसी से भी स्नेह नहीं था। वे अनभिज्ञ तथा मस्त-मौला थे। उन्हें उतार-चढ़ाव की कोई चिन्ता नहीं थी। किसी से डरते नहीं थे। वे किसी सिक्ख सेवक को नहीं बुलाते थे। यदि कोई सिक्ख उन्हें गुरु साहिबजादा होने के कारण प्यार से बुलाता और कोई उपहार देता था तो वह उस उपहार को दूर फैंक देते थे। जो भी जुबान पर आया बोल देते थे। आम संगत उनसे परिचित हो गई थी। भयभीत होकर उनको कोई भी बुलाया नहीं करता था।

जब बाबा महां देव जी जवान हो गये तब उनके विवाह बारे विचार किया गया परन्तु उन्होंने विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। वे कहने लगे कि वे तो बाल जती हैं। इन सांसारिक बन्धनों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। भाई गुरदास जी अपनी वाणी में लिखते हैं कि बाबा महां देव जी को जती तथा तपस्वी होने का बड़ा अभिमान था।

एक बार जब लाहौर में गुरु जी के वंशज बाबा सिहारी मल के पुत्र का विवाह आया तब रिश्तेदार विवाह में सम्मिलित होने की बेनती करने के लिये आये। तब गुरु जी जानते थे कि यदि वह विवाह में उपस्थित हो जाएं तो लाहौर की समस्त संगत आ जाएगी और विवाह की रीतियां पूर्ण करनी कठिन हो जाएंगी, इसलिये उन्होंने अपने रिश्तेदारों को कहा कि विवाह में शामिल होने के लिए वे अपने बड़े पुत्र को भेजेंगे। जब उन्होंने अपने बड़े पुत्र पृथी चन्द को बुला कर कहा तो उसने जाने से बिल्कुल इन्कार कर दिया।

गुरु जी ने सोचा कि पृथी चन्द तो यह बहाना कर गया कि अधिक कार्य के कारण उसके पास जाने के लिये समय नहीं है, परन्तु बाबा महां देव जी के पास तो काफी समय है, इसे विवाह में भेज देते हैं। उन्होंने बाबा महां देव को बुला कर प्यार से कहा, "हमारे रिश्तेदार के घर में विवाह है। हमें विवाह में सम्मिलित होना चाहिये. रिश्तेदारी में मिलने-जुलने से सम्बन्ध बने रहते हैं। आपके पास कोई काम नहीं है, कुछ दिनों के लिये रौनक मेला देख आओ।"

परन्तु गुरु जी के यह शब्द सुनकर बाबा महां देव जी बहुत नाराज़ हो गए और

क्रोध में आकर कहने लगा, "कौन किसी का रिश्तेदार है, मैं किसी भी रिश्तेदार को नहीं जानता और न ही मैं किसी के साथ कोई सम्बन्ध रखना चाहता हूं। सब रिश्तेदार स्वार्थी होते हैं। यदि कोई रिश्तेदार गरीब हो तो उसे कोई पूछने वाला नहीं होता, परन्तु अमीर रिश्तेदार की सब चापलूसी करते हैं तथा उसके साथ सम्पर्क रखने में बड़ा गर्व अनुभव करते हैं। मैं तो जती-सती हूं, मेरा कोई रिश्तेदार तथा बहन-भाई नहीं है, इसलिये मैं किसी के विवाह में जाने के लिये तैयार नहीं हूं।"

जब बाबा महां देव जी ने इन्कार कर दिया तो (गुरु) अर्जुन देव जी को लाहौर भेजना पड़ा।

बाबा महां देव भले ही पृथी चन्द के बहकावे में आकर उल्ट-पुल्ट बोल देता था परन्तु उसने कभी भी गुरु-गद्दी की इच्छा प्रकट नहीं की थी। सेवकों के साथ भी उसके कोई सम्बन्ध नहीं थे। धन की वह कोई परवाह नहीं करता था। इस प्रकार वे माया से निर्लेप साधु-महात्मा थे। उसकी सहज-स्वभाव से कही हुई बात भी पूरी हो जाती थी। इसलिये कई लोग उनसे आशीर्वाद भी लेने आते थे। जब वह प्रसन्नचित होते तब वे आशीर्वाद दे देते, यदि क्रोध में होते तब वे गालियों की बौछार कर देते थे।



ज्योति-ज्योत समा गये

(गुरु) अर्जुन देव जी विवाह में सम्मिलित होने के लिये लाहौर गये हुये थे। गुरु रामदास जी ने जाते समय उनको आदेश दिया था कि जब तक गुरु जी उनको न बुलाएं उस समय तक वे लाहौर में ही ठहरें, परन्तु जब गुरु जी ने उनको लम्बे समय तक न बुलाया तो उन्होंने गुरु जी के नाम दो पत्र लिखे, जिनको बाबा पृथी चन्द छुपा लेता था। अन्त में तीसरा पत्र गुरु जी को मिल गया। पहले पत्रों के बारे में जब पृथी चन्द को पूछा तो वह साफ मुकर गया। उसके घर की तलाशी पर वे पत्र मिल गये। गुरु जी ने बाबा पृथी चन्द को बहुत शर्मिन्दा किया तथा ऐसे घृणित कार्य पर फटकार लगाई। फिर उन्होंने उसी समय बाबा बुड्ढा जी को पांच सिक्खों के साथ लाहौर भेजा ताकि वे (गुरु) अर्जुन देव जी को साथ लेकर आएं। अमृतसर पहुंचने पर उन्होंने 28 अगस्त 1581 को गुरु-गद्दी सम्भाल दी। बाबा बुड्ढा जी ने गुरु अर्जुन देव जी को तिलक लगाने की रस्म अदा की। फिर गुरु रामदास जी ने तीन परिक्रमा करके गुरु अर्जुन देव जी को माथा टेका। तत्पश्चात् बाबा पृथी चन्द तथा बाबा महां देव को माथा टेकने के लिये कहा। बाबा पृथी चन्द पहले तो तिलमिलाये लेकिन फिर माथा टेक दिया। बाबा महां देव को तो इस पर कोई आपत्ति ही नहीं थी। फिर सारी संगत ने उनके चरणों पर नमस्कार किया।

गुरु रामदास जी दो दिन अमृतसर रहने के उपरान्त गोईंदवाल चले गये। गुरु अर्जुन देव जी, बाबा बुड्ढा जी तथा माता भानी जी भी उनके साथ थे। पहली सितम्बर सन् 1581 को गुरु जी अमृत समय (प्रभात काल) बावली पर गये, स्नान किया और इसके पश्चात् दीवान में आकर बैठ गये। फिर उन्होंने गुरु अर्जुन देव जी को अपने पास बुलाया और कहा, "अब आप चार गुरु साहिबान का रूप हो गये हो। इसमें कोई भिन्नता नहीं है। आप ने अब सिक्ख संगतों का नेतृत्व करना है। अमृतसर सरोवर के मध्य में हरिमन्दिर साहिब का निर्माण करना है। फिर उन्होंने सारी संगत को सम्बोधित करके कहा, "अब हमारे प्रभु में विलीन होने का समय आ गया है। आप ने किसी प्रकार का शोक नहीं करना, अपना मन कीर्तन में लगाना है।"

फिर उन्होंने माता भानी और बाबा बुड्ढा जी को पास बुलाया। उनकी ओर प्रेम भरी दृष्टि से देखा। कुछ समय पश्चात् संगत ने देखा कि गुरु जी की ज्योति प्रभु की ज्योति से जा मिली है। उसी समय कीर्तन आरम्भ हो गया। किसी ने भी आंखों में आंसू नहीं भरे। सभी ने प्रभु की करनी को प्रसन्नता से स्वीकार किया।

अगले दिन ब्यास नदी के किनारे उनका अन्तिम संस्कार कर दिया गया। सारी संगत का मन वैराग में डूबा हुआ था, परन्तु उनको जैसा हुक्म हुआ वह मानना जरूरी था, इसलिये सभी अपने आंसुओं को मन ही मन पी रहे थे।

गोईंदवाल दरबार हाल में सारी संगत इकट्ठी हुई। गुरु अर्जुन देव जी ने बाबा बुड्ढा जी को गुरुबाणी का पाठ करने के लिये कहा। उसके बाद गुरु अर्जुन देव जी ने सारी संगत को सम्बोधित किया। उस समय सारी संगत हैरान रह गई जब उन्होंने अपने पिता जी के बारे में बड़े ही उचित ढंग से सिक्खी सिद्धान्त की व्याख्या की। उन्होंने कहा, "दुनिया में आना-जाना बना हुआ है और बना रहेगा। इस मनुष्य जन्म को देवता भी तरसते हैं, परन्तु जीव जब चौरासी लाख योनियों को भोग कर मनुष्य शरीर धारण करता है तब उसका यह कर्तव्य बन जाता है कि प्रभु की भक्ति करे, उसके नाम का सिमरन करे ताकि चौरासी लाख योनियों के बाद मिला शरीर अपने वास्तविक उद्धेश्य को प्राप्त कर सके। मनुष्य का असली मनोरथ तो प्रभु-मिलाप है और प्रभु-मिलाप केवल प्रभु के नाम का सिमरन करने से, प्रभु को प्रेम करने से और प्रभु के पैदा किये हुए लोगों को प्यार करने से ही हो सकता है।"

